प्रकाशक तथा विक्रेता:—
सुशीला-स्वास्थ्य-प्रशिक्षण-केन्द्र
खगड़िया, मुंगेर N. E. Rly.

प्रथम संस्करण १६५६ ।

मूल्य—१॥)

मुद्रक—
श्री भत्तू लाल
दी डायमन्ड जुबली प्रेस, मुंगेर ।

प्राकृतिक चिकित्सा के प्रबल समर्थक



—महात्मा मो० क० गांधी

हम माने बैठे हैं कि दवा बिना रोग नहीं जाता। यह भारी भ्रम है। इसकी बदौलत जितनी तकलीफ उठायी और उठा रहे हैं उतनी अन्य कारणों से न भोगी है न भोगेंगे। दर्द के माने दुख है। रोग का भी यही अर्थ है। बीमारी का इलाज वाजबी है, लेकिन उसके दूर करने को दवा लेना व्यर्थ है, यही नहीं बहुत बार उससे नुकसान होता है। घर में पड़े कूड़े को ढांप देने का और दवा का एकसा असर होता है। ढांप देने से कूड़ा सड़कर हमें हानि पहुँचाता है। ढक्कन सड़ जाने पर वह कूड़े के ढेर को और बढ़ाता है, तब हमें सब निकालना पड़ता है। यही दशा दवा लेने वालों की होती हैं ....।

अतः कोई भी व्यक्ति क्यों न हो मनुष्य जिस चीज का पुतला बना है उसी से इलाज ढूंढे। पुतला-पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और वायु से बना है।

—महात्मा मो० क० गांधी



श्री मती सुशीला देवी

समर्पण—

सात्विक जीवन तथा उच्च विचार स्तर की पृष्ठपोषिका, वसुधैव कुटुम्बकम की उपासिका, सहृदया अपनी सहधर्मिणी श्री मती सुशीला देवी जिसकी एकमात्र प्रेरणा से प्रेरित होकर ही मैं इस पुष्पमाला को पिरो सकने में समर्थ हो सका हूं—

के कर कमलों में सादर समर्पित ।

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक प्राकृतिक-चिकित्सा के विषय में मेरे बारह वर्षों के अनुभव का परिणाम है। मार्च १९४३ से अगस्त १९५४ ई० तक लगभग चार हजार रोगियों ने दवा और डाक्टरों से निराश तथा विफल होकर मरणात्मक अवस्था में अपनी चिकित्सा के लिये मेरे पास आये। इन सबों ने मेरे बताये हुए प्राकृतिक चिकित्सा के विभिन्न स्नान और पट्टियां, युक्ताहार तथा व्यायामादि द्वारा अपना खोया हुआ स्वास्थ्य पुनः प्राप्त किया है। इसलिये मेरा प्राप्त अनुभव ठीक ही समझा जाना चाहिये।

इसे सभी जानते हैं कि जिन्दगी का सारा सुख और आनन्द "स्वास्थ्य" पर अवलम्बित है। अगर मनुष्य स्वस्थ न हो, तो उनके जीवन में सुख की समस्त सामग्री फीकी हो जाती है। रुग्न व्यक्ति का चित्त न किसी काम में स्थिर रह सकती है और न लोक या परलोक का कोई काम ही हो सकता है। इसलिये उत्तम स्वास्थ्य सभी सुखों में प्रधान है। इस "स्वास्थ्य-सुख" को प्राप्त करने के लिये समाज में दिन प्रति-दिन कौन-कौन से प्रयत्न नहीं किये जा रहे हैं? फिर भी जन साधारण का स्वास्थ्य उन्नत हुआ नजर नहीं आता। अथवा इसे यों कहना चाहिये कि मनुष्य में बल-वीर्य और पुरुषार्थ का लोप होता जा रहा है। आज समस्त मानव-जाति किसी न किसी रोग से ग्रसित है। सृष्टि में मानव-समाज के सिवा यह बात कहीं भी नहीं देखी और पायी जाती

है कि अन्य जीव भी, जैसे—हाथी, घोड़े, हिरण आदि मनुष्य की तरह हर साल या हरएक मौसम में बिमार होते हैं अथवा किसी न किसी रोग से ग्रसित हो रट-रट कर या दुख भुगतकर असमय में प्राणान्त होते हैं न यही देखने में आती है कि मनुष्य की तरह उनकी आंखें अथवा दांत ही कभी खराब होती है। किसी भी जीव को कोई भी चश्मा पहने या नकली दांत लगाते हुए नहीं देखा। वह पूर्ण स्वस्थ रहकर और पूरी आयु भोगकर ही पञ्च तत्व को प्राप्त होता है। तो क्या, इस सृष्टि में मनुष्य ही इतना कमजोर बनाया गया है कि वह किसी न किसी रोग से पीड़ित रहा करे ? उसके विद्वान एवं सभ्य बनने तथा सभी तरहसे समर्थ होने का यही परिणाम है कि वह तरह-तरह के व्याधियों से आक्रान्त हो असमय में ही मृत्यु का शिकार हो जाय ? पैदाइश और मृत्यु विभाग की रिपोर्टों से मालूम होता है कि ३० और ४५ वर्षों के अन्दर अधिकांश मनुष्यों की मृत्यु किसी न किसी रोग विशेष के कारण हो जाती है। ऐसा होता क्यों है ? असभ्य और जंगली कहे जाने वाले लोग शायद ही कभी बिमार पड़ते हों, वे हमेशा तन्दुरूस्त और तगड़े दिखाई देते हैं। उनकी आयु भी दीर्घ होती है। फिर हमारी इस दुरावस्था का कारण क्या है ? यही न कि हम प्राकृतिक पथ से बहुत दूर हट गये हैं।

संसार में मनुष्य स्वस्थ अवस्था में उत्पन्न होता है। यदि वह निरन्तर प्रकृति के नियमों पर चलता रहे तो कभी अस्वस्थ न हो। इन पुस्तकों में प्रकृति के इन्हीं स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों को बताया गया है, तथा रुग्नावस्था में शरीर

की क्या आवश्यकताएं हैं, और उनको प्राकृतिक साधनों द्वारा किस प्रकार पूरी करनी चाहिये, इन सभी बातों का विचार इन पुस्तको में की गई है। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों के लिये आहार-विहार तथा स्वास्थ्य के सम्बन्ध में, सात्विक जीवन का पथ प्रदर्शन करेगी और उनके जीवन को पवित्र, तेजस्वी तथा दीर्घायु बनायेगी।

इस पुस्तक को लिखने की प्रेरणा मेरी धर्मपत्नी "श्री मती सुशीला देवी 'साहित्य विशारदा" से मिली। इस विषय में मेरा जितना अनुभव था, उसको कम से कम शब्दों में और तर्क सम्मत सरल भाषा में लिपि बद्ध उनके सहयोग से ही कर सका हूँ। अतः इस पुस्तक को लिखने का श्रेय उन्हीं को है। उनके प्रति मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ।

साथ ही उन विद्वान लेखकों व प्रकाशकों को भी धन्यवाद दिये बिना इस वक्तव्य को समाप्त नहीं कर सकता, जिनकी रचनाओं या पुस्तकों से मुझे इस पुस्तक के लिखने में सहायता मिली है।

मैं डी० जे० प्रेस, मुंगेर के कर्मचारियों को भी अधिक धन्यवाद देता हूँ, जिन्होने दिन रात परिश्रम करके इस पुस्तक को सुन्दरता के साथ थोड़े समय में छापने की सुविधा— "सुशीला-स्वास्थ्य प्रशिक्षण—केन्द्र" को कर दी।

पुस्तक शीघ्र प्रकाशित होने के कारण, सभव है यत्र-तत्र कुछ छापे की अशुद्धियां रह गई हों इनके लिये मैं अपने अनुभव पाठकों, उदार लेखकों और समालोचकों से क्षमा पार्थी

हूँ। द्वितीय संस्करण में वे सभी अशुद्धियां सुधार दी जावेंगी।

सुशीला-आश्रम	विनीत—
खगड़िया	श्री चन्द्रशेखर योगी आयुर्वेदाचार्य
विजया-दशमी २६-१०-'५५	चिकित्सक
	सुशीला-स्वास्थ्य-प्रशिक्षण-केन्द्र
	खगड़िया, जि० मुंगेर।



श्री चन्द्रशेखर योगी

—लेखक

विषय—सूची

—※—

प्राकृतिक-चिकित्सा के प्रयोग

पहला अध्याय

—:❀:—

हमारा स्वास्थ्य

मनुष्य सदा स्वस्थ रह सके तो उससे बढ़कर कुछ नहीं है। क्योंकि जीवन के सारे आनन्द एवं खुशियां उनके स्वास्थ्य पर अवलम्बित है। आयुर्वेद में स्वस्थ्य मनुष्य का लक्षण इस प्रकार बताया है।

पूर्ण स्वास्थ्य का लक्षण

समदोषः समाग्निश्च समधातुः मल क्रिय।
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

अर्थात—जिस मनुष्य के (समदोषः) तीनों दोष—वात, पित्त और कफ समान अवस्था में हों, (समाग्निश्च) अन्न पचाने वाली और भूख लगाने वाली शक्ति समान हों, (समधातु) सभी धातुएं—रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र सभी समुचित मात्रा में हों, (मलक्रिय) मल, मूत्र, पसीना आदि समान रूप में होता रहे। साथ ही (प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः) चित्त, इन्द्रिय एवं मन प्रसन्न रहे वही स्वस्थ कहा जाता है।

पर कितने भारतीय ऐसे होंगे, जिनका स्वास्थ्य उपरोक्त लक्षणों से मिलता होगा ? आज सर्वत्र ऐसे ही लोग देख पड़ते हैं, जिनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। किसी के वात, पित्त, कफादि में विकृति आ गई है, तो किसी का अन्न ही ठीक से परिपाक नहीं होता है। किसी के धातु (रस-रक्तादि) दूषित हो गए हैं, तो किसी के मल, मूत्र ही अनियमित

हमारी दशा

हो गया है। यदि हम अपने दिनचर्या पर विचार करें तो मालूम होगा कि हमारा सम्पूर्ण जीवन रोगों का इलाज करने में ही व्यतीत होता है। कभी शिर में पीड़ा है, कभी कमर में दर्द है, किसी दिन हरारत है तो किसी दिन बुखार, कभी पेचिश होती है तो कभी पतले दस्त आते हैं; और कभी हैजा फैलता है तो कभी चेचक का प्रकोप भयंकर रूप धारण करता है। कब्ज तथा जुकाम जैसी बिमारियां तो बनी ही रहती है। हमारे स्वास्थ्य का रोना इतना विस्तार पा चुका है कि विशेष रूप से उसके बताने की आवश्यकता नहीं है। समाज को रात दिन सदा सर्वदा एक न एक बिमारी के कष्ट में दुखी रहना पड़ता है। आखिर क्यों ?

यही न कि हमारा जीवन नितान्त अप्राकृतिक हो गया है। हमारा आहार, विहार तथा व्यवहार सभी कुछ का ढंग अनुचित और रोग बढ़ाने वाला हो गया है। तीक्ष्ण पदार्थों से युक्त (मांस, मछली, अंडा, चाय, बिस्कुट, प्याज, लहसुन, मिर्च, मसाला, बीड़ी, सिगरेट आदि) तामसिक भोजन, घर के अगल-बगल पेशाब-पखाना का करना, गन्दी नालियों का बहाव, बरामदे, आंगन या दिवारों पर बिना विचारे थूक देना, घर के अगल-बगल में पडे-पड़े सड़ जाने वाली चीजें, शाक-सब्जी के छिलके, कूड़े-कचरे आदि फेंक देने की आदत, फैसन तथा वासनामय जीवन, ये सभी हमारी अप्राकृतिक एवं दूषित आहार-विहार तथा व्यवहार के प्रतीक हैं।

जिनके कारण आये दिन मलेरिया, चेचक, हैजा, प्लेग, इन्फ्लूएञ्जा आदि एक न एक घातक छूत से

मृत्यु तथा रोगों की फैलने वाली महामारियाँ हरएक
अधिकता का सात आंधी की तरह आती हैं और हजारों
अनुमान को अकाल में ही मृत्यु का ग्रास बनाती

है। पैदाइश तथा मृत्यु विभाग के रिपोर्टों से पता चलता है कि देश में १६०१ ई० से १६३८ ई० के बीच १ करोड़ २५ लाख से कुछ अधिक व्यक्तियों की मृत्यु केवल प्लेग के कारण हुई। प्रति साल हैजा और चेचक के प्रकोप से छोटे-छोटे बच्चों और सर्वसाधारणों की मृत्यु ५०—६० लाख से भी अधिक होती है। सन १६१८ और १६१६ में इन्फलुएञ्जा (कफ ज्वर) की जो भयानक बिमारी फैली थी, उससे लगभग ६६ लाख मनुष्यों की मृत्यु हुई थी। देश में मलेरिया ज्वर की विभीषिकाएं प्रति वर्ष बढ़ती ही जा रही हैं। १६३८ ई० की मलेरिया जांच विभाग के रिपोर्टों से पता चलता है कि प्रत्येक वर्ष यहां लगभग १८ करोड़ व्यक्ति मलेरिया ज्वर से पीड़ित होते हैं, जिसके कारण प्रति वर्ष १ करोड़ ४० लाख से अधिक व्यक्तियों की मृत्यु होती है और शेष यक्ष्मा तथा अन्य घातक रोगों का शिकार होते रहते हैं। योरोप वालों ने विगत ३५-४० वर्षों में जहां उपरोक्त सभी बीमारियों को मार भगाया है। वहां हमारे देश में दिन प्रतिदिन इसकी वृद्धि होती ही जा रही है। अनुमान है कि हमारे देश में लाखों स्त्री-पुरुष हर समय किसी न किसी रोग के कारण पलंग पर पड़े रहते हैं, और अनुचित इलाज तथा गलत खान-पान के कारण पञ्चतत्त्व को प्राप्त हो जाते हैं।

इतना ही नहीं, मनुष्य की जीवन सीमा निरन्तर कम होती जा रही है। हमारी औसत आयु गिर गई है।

औसत आयु तथा मृत्यु संख्या प्रति १००० पर, योरोप वालों के साथ, भारतियों की जिन्दगी और मृत्यु संख्या की तुलना।

	बच्चा	जवान	सर्व साधारण	औसत आयु
योरोप	'६	८'०	१२'२	६० वर्ष
भारत	२४'०	२२'४	३५'०	२० वर्ष

आज देश में लाखों बच्चों, जवानो और सर्वसाधारणों की मृत्यु प्रति वर्ष केवल इसलिये होती है, कि उन्हें औषध सम्प्रदाय के डाक्टर, जिन पर जनता के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी है, स्वास्थ्य के वे सीधे-सादे नियम नहीं बताते, जो प्राकृतिक नियमानुसार जीवन-यापन कर सदा स्वस्थ और दीर्घजीवी रह सके।

सभी वैज्ञानिक कहे जाने वाले डाक्टर प्रायः हरएक रोगों का कारण किसी न किसी तरह के किटाणु बताते हैं।

रोग का कारण किटाणु-भ्रमात्मक प्रचार

इन विद्वान डाक्टरों का कहना है कि कुछ किटाणु बीमार आदमियों के सम्पर्क में आने से फैलती है, कुछ जीव-जन्तुओं द्वारा इधर-उधर फैलती है और कुछ किटाणु खाने-पीने के पदार्थ तथा नित्य के प्रयोग में आने वाले कपड़ों द्वारा फैलती है, जैसे—हैजा, चेचक, इन्फ्लुएञ्जा, लाल बुखार, मोतीझरा, खांसी, यक्ष्मा, प्लेग, आदि बीमारियां प्रत्यक्ष पदार्थों के सम्पर्क से शरीर में किटाणु प्रवेश कर जाने से होता है। कुछ ऐसे भी रोग होते हैं, जो किटाणु के काटने या किसी अन्य प्रकार से उसका विष शरीर में प्रवेश हो जाने से होता है। मलेरिया, फील पांव, काला-ज्वर, पीली बुखार, गर्दन तोड़ बुखार आदि इसी श्रेणी में है। इन सबों के अन्वेषण में रोगी के खून, पखाना, मूत्र,

कफ-थूक. कै, मवाद आदि में तरह-तरह के कीटाणु देख पड़ते हैं, तथा चिकित्सा पद्धति में उनके विनाश पर ही विशेष ध्यान देते हैं।

मान लीजिये, कोई ऐसा व्यक्ति है, जिनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है—वह कब्ज, शिर दर्द, ज्वर अथवा खांसी आदि एक न एक जीर्ण रोगों मे ग्रसित रहता है। रोग नाश के लिये वह बराबर पेटेन्ट दवाइयां खाता रहा है, पर उनकी बीमारियां जड़ मे नहीं जाती, एक बीमारी दबी कि दूसरा हाजिर हुआ। उनका भोजन मील छटे चावल, मैदे की बनी चीजें पूरी, कचौरी, हलुवा आदि तथा मिर्च मसालों मे युक्त भूनी हुई सब्जियां अथवा मांस मछली आदि होता है। जिनमें आवश्यक विटामिनों (जीवन-तत्व) और क्षारीय पदार्थों का सर्वथा अभाव रहता है। जो शुद्ध रक्त और शरीर को विकार रहित बनाता है। वह प्रकाश और खुली वायु में भी घूमने के लिये नहीं निकलता, जो स्वास्थ्य के लिये अति आवश्यक है। यही सब उसके अस्वस्थ होने का मुख्य कारण है। वह जीवनोपयोगी आवश्यक प्राकृतिक नियमों का पालन करके ही पुनः खोया हुआ स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है। अतः उसी के आधार पर उसका चिकित्सा होना चाहिये।

किन्तु वह व्यक्ति अगर अपने रोग का जांच किसी विशेषज्ञ डाक्टर से कराना चाहेगा, तो विशेषज्ञ महोदय उनके दैनिक जीवन चर्या पर ध्यान न देकर केवल उनके रक्त, मल-मूत्रादि को अनुसंधानशालाओं में प्रयोग द्वारा जांचेंगे और यह जानने की अधिक कोशिश करेंगे कि रोग का कारण क्या

है ? अन्त में सारी खोज के बाद उन्हें रक्तादि में छोटे-छोटे किटाणु देख पड़ेंगे और उसी को रोगोत्पादन का करतूत बतलायेंगे, तथा चिकित्सा पद्धति में उनके विनाश पर ही विशेष ध्यान देंगे। यही कारण है कि जैसे-जैसे औषधि सम्प्रदायों की प्रगति हो रही है उसी हिसाब से चिकित्सा पर खर्च और पक्षाघात, जलोदर, कुष्ट, मधुमेह, क्षय जैसे घातक रोगों की वृद्धि भी साथ ही साथ होती जा रही है।

प्राय हजारों किस्म के रोग—मधुमेह, गठिया, क्षय (टी० बी०) आदि से मनुष्य पीड़ित होता है और मर जाता है।

रोग का कारण किटाणु नहीं, गन्दगी (दूषित द्रव्य) है।

इसका कारण कीटाणुओं का आक्रमण नहीं है, बल्कि मनुष्य के दूषित रहन-सहन के ही कारण उत्पन्न हुए हैं। अनियमित या अप्राकृतिक आहार-विहार के कारण पाचन क्रिया में विकृति आ जाती है। भोजन का ठीक से परिपाक नहीं होता है, मन्दाग्नि हो जाती है। खाया हुआ पदार्थ पचेन्द्रिय में जितनी देर रहना चाहिये उससे अधिक समय तक रहता है और वहां वह सड़ने लगता है, जिससे उन सभी अवयवों में (आमाशय, छोटी आंतें, क्लोम, यकृत, गुर्दे, गुदा आदि जो भोजन को पचाकर अनावश्यक पदार्थों को शरीर से बाहर निकाल देता है और शुद्ध रस रक्तादि को बनाता है) अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है, और दूषित रस रक्तादि बनने लगते हैं। दूषित रक्त से मांस, मज्जा, अस्थि, मेद और शुक्रादि धातुएं विकार युक्त

और निर्बल हो जाती है। रक्त से ही मांस पेशियों और नाड़ी संस्थानों को पोषण मिलता है। ये सारे शरीर में सब ओर विद्यमान है। इन्हीं की सहायता से हम चलते-फिरते हैं तथा अन्य कार्य करते हैं। नाड़ी संस्थान का मुख्य काम शरीर को चलने, फिरने, उठने-बैठने, मुड़ने-घुमने तथा कार्य करने-वास्तव में गति देने का है। यह शरीर के प्रत्येक अवयवों (पेशियों) में गति पैदा करता है। दूषित रक्त से नाड़ी संस्थान विकार युक्त और कमजोर हो जाता है। जिसका कुप्रभाव पहले पाचन प्रणालियों पर पड़ता है। भूखमन्द हो जाती है। समय पर मल-मूत्र का हाजत मालुम नहीं होता है अगर होता भी है तो साफ और खुलासा नहीं होता, बद्धकोष्टता उत्पन्न हो जाती है। मल आंतों ही में संचय होने लगता है और अन्दर ही अन्दर सड़कर अत्यन्त बदबूदार तथा जहरीला बन जाता है। सोचने की बात है कि जिस मल के बाहर निकलने पर उसकी बदबू से दम घुटने लगता है, तब उसके भीतर रहने से मनुष्य कैसे सुखी और अरोग्य रह सकता है। आंतो में अधिक देर मल के रूके रहने से अपान वायु बिगड़ कर मल को ऊपर की ओर चढ़ाने लगती है, जिससे वह खराब मल फिर पचेन्द्रिय में जाकर पचने लगता है और उससे सारे शरीर का रक्त गन्दा हो जाता है। इस तरह अनियमित या अप्राकृतिक आहार से पाचन क्रिया खराब होता है, पाचन की विकृति से रक्त दूषित होता है और रक्त के दूषित होने से शरीर के सभी अवयव तथा नाड़ी संस्थान विकारयुक्त एवं कमजोर हो जाता है। नाड़ी संस्थानों और अवयवों की कमजोरी से मल-मूत्रादि की सफाई नहीं होती है। फिर मलावरोध से पाचन क्रिया

खराब होता है, और पाचन की विकृति से रक्त दूषित होता है। इस प्रकार मन्दाग्नि तथा मलावरोध (कब्ज) का बेढंगा चक्कर चलता रहता है, जो शरीर को बिल्कुल विकार ग्रस्त बना देता है। आचार्य वाग्भट ने यही बात इस प्रकार कहे हैं—

रोगा सर्वेऽपि मंदेऽग्नौ सुतरामुदराणि च।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैः जायन्ते मल संचयात॥

निदानस्थान अ० १२ श्लो० १

सुश्रुत में भी लिखा है कि—

सर्वेषामेव रोगाणाम निदानं कुपिता मलाः।
तत्प्रकोपस्य तुप्रोक्तं विविधाहित सेवनम्॥

अर्थात—संसार में जितने रोग हैं, सब मल के कुपित होने से ही उत्पन्न होते हैं, और तरह-तरह की बदपरहेजियों के कारण शरीर में मल इकट्ठा हो जाता है।

शरीर में नित्य उत्पन्न और संचित होने वाला मल बाहर न निकल कर अन्दर ही आँतों में सड़ने लगता है और दूषित दुर्गन्ध युक्त वायु रूप में परिणत होने लगता है। यह दूषित वायु मल के छोटे-छोटे कण रक्त में मिला देती है और रक्त उन्हें शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों में फैला देती है। इस दशा में रोग जनक अनेक कीटाणु उसमें पैदा हो जाते हैं और ऋतु परिवर्त्तन, बाह्य आघात, मानसिक उद्वेग आदि किसी न किसी कारण से वह विचलित हो जाता है तथा शरीर की नियमित क्रिया में अव्यवस्था उत्पन्न कर देती है, इस प्रकार शरीर के जिस अवयवों में दूषित द्रव्य का संचार अधिक होता है,

वह उसी अवयवों की व्याधि के नाम से पुकारा जाता है। जैसे—पाचन अङ्गों में दूषित द्रव्य का संग्रह होने से अनपच या मन्दाग्नि की बीमारी होती है। गुदा में इसका (दूषितद्रव्य का) व्याघात होने से दस्त, पेचिस, हैजा या कब्ज, बवासीर, भगन्दर, आंतों की प्रदाह (Colitis) आदि बीमारियां होती हैं। यकृत के विकार ग्रस्त होने से यकृत वृद्धि रक्त की कमी, शोथ, पाण्डु आदि रोग होते हैं। फेफड़े में दूषित द्रव्य का संचय होने से खांसी, दम्मा, क्षय आदि बीमारियां होती हैं। इस तरह शरीर के जिन अवयवों, धातुओं और तन्तुओं में दूषित द्रव्यों का व्याघात होता है वह उसी रूपों और लक्षणों में हमें ज्ञात होते हैं। इससे स्पष्ट है कि अनेक रूपों व लक्षणों में दिखाई पड़ने वाला रोगों का भिन्न-भिन्न कारण मानना हमारी भूल है। रोग एक ही है और उसकी उत्पत्ति का कारण भी एक ही है और वह कारण शरीर में दूषित द्रव्य का (मल का) सचय होना ही है।

दूसरा-अध्याय

—:※:—

व्याधि और उसकी चिकित्सा

शरीर में दूषित द्रव्य का संचित होना रोग है। अगर इन विकारों को प्राकृतिक साधनों द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाय तो, व्याधि अपने आप शान्त हो जाती है साथ ही शरीर को भी पुनः उसका स्वभाविक रूप प्राप्त हो जाता है। इस कथन को भली भांति स्पष्ट करने के लिये मैं कुछ रोगियों की चिकित्सा — जो मेरे "स्वास्थ्य-प्रशिक्षण-केन्द्र" में हुई है, उसका वृतान्त लिखता हूँ।

[१—यक्ष्मा रोग Tuber Culosis]

संस्कृत में इस रोग को राजयक्ष्मा, राज रोग, क्षय और शोष कहते हैं। प्राचीन काल में राजा चन्द्रमा को यह रोग हुआ था। इसी से इसका नाम राजयक्ष्मा या राजरोग पड़ा। इस रोग में रस, रक्तादि शरीर के सम्पूर्ण धातुओं का क्षय अथवा शोषण होने लगता है, इसी से इसको शोष या क्षय रोग कहते हैं। एलोपैथी विशेषज्ञ इस रोग को ट्यूबर कुलोसिस तथा टी० बी० आदि नामों से पुकारते हैं।

यह रोग प्राचीन काल में अत्यधिक विलासी जीवन व्यतीत करने वाले राजाओं और धनिक पुरूषों को हुआ करता था। और वास्तव में यह रोग अप्राकृतिक खान-पान तथा अधिक विषय-वासनाओं में रत रहने के ही कारण होता है। हमारे आयुर्वेदीय ग्रन्थों में लिखा है कि —

वेग रोधात् क्षमाच्चैव, सहसा द्विष मासनात्।
त्रिदोषो जायेत यक्ष्मा गदो हेतु चतुष्ठयात् ॥

अर्थात—बरावर मल मूत्रादि वेगों को रोकने से, मन्दाग्नि के कारण रस-रक्तादि धातुओं का क्षय होने से, शक्ति से अधिक काम करते रहने से, विषम भोजन—अर्थात अनियमित भोजन—कभी कम खाना; कभी ज्यादा खा लेना, कभी पहला भोजन पचे विना ही दूसरा भोजन कर लेना, कभी उपवास करना और उपवास के वाद तुरन्त ज्यादा मात्रा में भोजन करना, खट्टा, तीता, चटपटा, मांस, मछली, अंडा, चाय, विस्कुट, बीड़ी, सिगरेट, शराब आदि एक या अनेक पदार्थों को वार—बार अधिक मात्रा में खाते रहने से—यक्षमा की बीमारी होती है। इस रोग में वात, पित्त, और कफ तीनों दोष विगड़ जाते हैं। और इसके होने का यही चार प्रधान कारण है।

उपरोक्त व्याख्याओं का स्पष्टीकरण आयुर्वेद मे फिर इस प्रकार किया है—

मन्द वन्हि विदग्धस्तु कटुर्वाऽम्लो भवेद्रसः।
सकुर्यान्द हुलान रोगान विषकृत्य करोत्यपि॥

अर्थात मन्दाग्नि के अवस्था में खाये हुए पदार्थों का जो रस रक्तादि वनता है वह अम्ल या खटाई प्रधान होता है। उससे अनेक तरह के रोग उत्पन्न हो जाते हैं और विष के अनेक लक्षणों को प्रकट करते हैं, तथा जो विष के समान ही हानि कारक होता है। यह विष (दुषित द्रव्य) ही यक्षमा रोग का प्रधान कारण है।

उपर के विवेचनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनियमित रहन सहन से पहले पाचन प्रणाली खराब हो जाती है। उस अवस्था में भोजन का सात्मिकरण ठीक से नहीं होता है,

अर्थात—उससे रस रक्तादि दूषित वनने लगते हैं, जो शरीरावयव के योग्य नहीं होता। परिणाम स्वरूप शरीर के प्रत्येक अवयव क्षीण होने लगते हैं और उसके भीतर अनावश्यक गर्मी और खुश्की पैदा हो जाती है। जिसका कुप्रभाव फेफड़ों पर अधिक पड़ता है। इसी से फेफड़ों मे सूजन तथा सड़न पैदा हो जाती है। यह सड़ा हुआ भाग ही कफ या वलगम के रूप में वाहर निकलता रहता है।

यक्ष्मा रोग के लक्षण—(१) वार-वार जुकाम का होना, शुष्क खांसी का होना, तालू में कफ का चिपकना। (२) मूत्र कम हो जाना, चक्कर नशा सा रहना, नींद खूब आना। (३) मांस मछली, खट्टा, तीता, चटपटी, आदि वस्तुओं को खाने की इच्छा तथा स्त्री प्रसंग में वहुत मन लगना। (४) वार-वार शरीर देखने की इच्छा होना; क्रोध अधिक होना, वक्षस्थल व पीठ मे साधारण दर्द, किसी काम मे चित्त न लगना, उठते वैठते आंखों के आगे अंधेरा होना, शरीर में हमेसा थकान सा रहना, कमजोरी का वढ़ना तथा शरीर मे हरारत (हल्का-ज्वर) का वना रहना आदि यक्ष्मा रोग का मुख्य लक्षण है। महर्षि चरक ने भी इस रोग का लक्षण इस प्रकार वताया है—

अग्निमाद्य ज्वारः शैत्यं वान्तिः शोणित पूययोः।
सत्वहानिश्च दौर्बल्यं रोगराजस्य लक्षणम॥

अर्थात—मूत्र की कमी, ज्वर तथा जाड़ा का लगना, कफ के साथ रक्त या मवाद का निकलना, शारीरिक अवयवों का क्षय और कमजोरी का वढ़ना—यही राज यक्ष्मा का प्रधान लक्षण है।

यक्ष्मा का रोग वस्तुतः हमारे अनियमित जीवन यापन के कारण उपजा हुआ दुषित द्रव्य ही है, जिसके परिणाम स्वरूप पाचन अंगों की कमजोरी, ज्वर, खांसी, फेफड़ों का सड़न आदि अनेक रोग उपद्रव के रूप में उठ खड़े होते हैं। यदि रोगी शरीर से दुर्द्रव्य विष को निकाल दिया जाय और साथ ही उसका पाचन प्रणाली ठीक किया जा सके, जिसमें वह जो कुछ भी खाय वह शीघ्र पच जाय, फिर रस, रक्त मांस, मज्जा, अस्थि, मेद और शुक्र तथा शरीर के प्रत्येक अवयव और कोष (Cell) क्रमशः पुष्ट होने लगे तो रोगी के अच्छा होने में कोई शक न होनी चाहिये।

यहां कुछ चिकित्साओं का हाल लिखकर इस विषय का विशेष विवेचन करूंगा।

(A)—एक क्षय का रोगी.— खेदु तांती, केशोपुर जमालपुर का करीब डेढ़ वर्षों से यक्ष्मा (T B.) रोग से पीड़ित था। वह ६ अगत १६४७ ई० को मेरे "स्वास्थ्य प्रशिक्षण केन्द्र" में अपनी चिकित्सा के लिये आया। उन्हें प्रति समय खांसी तथा मन्द-मन्द ज्वर बना रहता था। ज्वर ग्यारह बजे दिन से चढ़ना शुरू होता था और दस बजे रात्रि के बाद उतरना शुरु होता था। ज्वर मांपने पर १०२ से १०५ फै० हीट होता था। शरीर में अस्थिपंजर मात्र रह गया था, कन्धे और पसलियों मे सूई चूभोने के जैसा दर्द होता था। हाथ पैर का तलुआ जलता रहता था।

वह शुरु में मुंगेर और जमालपुर के कई अच्छे-अच्छे डाक्टरों से इलाज करवाया, परन्तु कुछ भी फायदा न होने पर पटना चला गया। वहां करीब १३-१४ महीने तक

दवा और डाक्टरों के चक्कर में पड़ा रहा, जब रोग अधिक कष्ट साध्य हो गया तब वह घर चला आया और अन्त में उसने मेरी शरण ली।

रोगी को देखने ये साफ मालूम हो रहा था कि उसका पाचन प्रणाली (जिसमें यकृत भी सम्मिलित है) और फेफड़े आदि दूषित द्रव्य के भार से बिल्कुल विकृत हो गया है, साथ ही स्नायु मंडल और जीवनी शक्ति भी कमजोड़ पर गया है। रोगी का निरोग होना इस बात पर निर्भर था कि उसकी जीवनी शक्ति और पाचन प्रणाली सुधर जायँ। उन्हें जो भोजन मिले उसका रस रक्तादि अच्छा बने तथा शरीर से दूषित द्रव्य बाहर निकल जाय।

अतएव उसकी चिकित्सा निम्नांकित विधि से की गई—

(क) उसे खुली जगह में साफ और हवादार कोठली में रखा गया जहां उसे बराबर (२४ घंटे) शुद्ध वायु मिले।

(ख) प्रति दिन सुबह में रोगी को—उसके सहन शक्ति के अनुसार धूप स्नान कराया जाता था। धूप स्नान लेते समय सिर पर भिंगी तौलिया रखो जाती थी। स्नान के बाद सारे बदन को भिंगी तौलिया से पोछ दिया जाता था।

(ग) धूप स्नान के बाद पेट व कमर के चौतरफ भिंगी चादर की पट्टी १५–२० मिनट तक दी जाती थी। दूसरी पट्टी दो बजे दिन में छाती तथा पेट के चौतरफ एक–डेढ़ घंटे तक दिया जाता था और तीसरी पट्टी छाती के चौतरफ नौ बजे रात्रि में दिया जाता था। भिंगी चादर का पानी पहले काफी निचोड़ दिया जाता था, उसके बाद पट्टी बांधी

जाती थी। प्रत्येक पट्टी के बाद भिंगी तौलिया से सारा अंग पोछ दिया जाता था।

(घ) खाने के लिये प्रति दो घंटे पर गाय का ताजा दूध ४ छटांक और नारंगी जाति का नीबू का रस या बेदाना का रस २ छटांक, दोनों को मिलाकर दिया जाता था। बीच-बीच में भूख लगने पर केवल फलों का रस अथवा सब्जियों का सूप भी दिया जाता था।

इस प्रकार एक महीने की चिकित्सा से रोगी को कुछ कम पर स्थायी लाभ हुआ। खांसी पहले अधिक होता था, वह बहुत कम हो गई। ज्वर मापने पर पहले १०२ से १०५ फै० हीट होता था, वह कम होकर १०० से १०३ फै० हो गया। नींद पहले बिलकुल नहीं होता था, थोड़ा नींद भी आने लगा।

दूसरे महीने में चिकित्सा क्रम इस प्रकार रखा—

(च) पहले महीने का 'क' और 'ख' नियम पूर्ववत रखा।

(छ) धूप स्नान के बाद हल्का उष्ण पानी का कटि स्नान ५ मिनट तक दिया जाता था, स्नान के बाद भिंगी तौलिया से सारे बदन को पोछ दिया जाता था। फिर दो बजे दिन में डेढ़ घंटे तक छाती और पेड़ू के चौतरफ भिंगी पट्टी तथा शाम को ६ बजे १० मिनट तक का मोहन स्नान दिया जाता था। साथ ही इस बात का हमेशा ख्याल रखा जाता था कि रोगी को काफी विश्राम मिले।

(ज) खाने के लिये सुबह में केवल गाय का थोड़ा धारोष्ण दूध, दोपहर में उबाली हुई सब्जी, आधा छटांक आटे की

लप्सी, शाम को थोड़ा दूध और गदरे फल दिया जाता था। भोजन हमेशा हल्की मात्रा में दी जाती थी, जो शिघ्र पच जाय।

इस प्रकार दूसरे महीने में रोगी के स्वास्थ्य में काफी सुधार हुआ। खांसी बहुत कम हो गई, हाथ पैर की तलुओं का जलन दूर हो गया। थोड़ी दूर तक चलने फिरने की शक्ति भी आ गई। ज्वर में कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ।

तीसरे और चौथे महीने का चिकित्सा क्रम निम्नलिखित था—

(अ) शक्ति के अनुसार धूप में टहलने के लिये बताया गया। बाद सारे बदन को पोछ कर विश्राम दिया जाता था।

(ब) दस बजे दिन में घर्षण स्नान, दो बजे कटिस्नान और शाम में मेहन स्नान दिया जाता था।

(स) खाने के लिये सुबह में धारोष्ण दूध और संतरा जाति के फल, दोपहर में उबाली हुई सब्जी और थोड़ा रोटी तथा शाम को दूध और गदरे फल दिया जाता था। भोजन हमेशा स्वल्प मात्रा में दिया जाता था जो आसानी से पच जाय।

इस बार रोगी के स्वास्थ्य में काफी उन्नति हुई। ज्वर ९७.-९८॥ फै० हीट पर चला आया। खांसी नाम मात्र को सुबह में हो जाता था। शारीरिक शक्ति में भी काफी वृद्धि हुई। दो-तीन माइल चलने फिरने की शक्ति आ गई थी।

पाँचवां और छठे महीने का चिकित्सा क्रम नीचे लिखे अनुसार बताया गया—

(क)—सुबह प्रकाश युक्त स्थानों में तैल मालिश और कसरत

(योगासन) कराया जाता था। फिर थोड़ी देर विश्राम करने के बाद घर्षण स्नान करता था।

(ख)—शाम को क्रिया क्रम से निपटने के बाद ४ बजे कटि स्नान लेकर टहलने के लिये बताया गया

(ग)– खाने के लिये सुबह में फल, दूध, दोपहर मे रोटी उबाली हुई सब्जी तथा शाम को सूखा फल और दूध बताया गया था।

इस बार रोगी पूर्णतः स्वस्थ हो गया और अपने परिवार के साथ हिलमिल गया।

(b)—दूसरा क्षय का रोगी—वासदेव पांडे, बारसली गंज का मेरे पास आया। वह करीब दो वर्ष से इस रोग से पीड़ित था। उन्हे बराबर सूखी खांसी होता रहता था। बहुत खांसने पर कभी-कभी पीला बदबूदार गाढ़ा कफ निकलता था। कन्धे और पसलियों में थोड़ा-२ दर्द होता रहता था। प्रति समय मन्द-मन्द ज्वर बना रहता था। ज्वर मापने पर ९८. तथा ९९. फै० हीट होता था। मन्दाग्नि और कब्ज का शिकायत बराबर रहता था।

(क)—उन्हें प्रति दिन क्रिया क्रम से निपटने के बाद २० मिनट के लिये कटि स्नान दिया जाता था, बाद में शक्ति भर कसरत कराया जाता था। फिर कुछ समय तक विश्राम करता था। ९–१० बजे दिन में घर्षण स्नान कर लेता था।

(ख)—शाम को कभी कटि स्नान और कभी कमर के चौतरफ भिंगी पट्टी दिया जाता था।

(ग)—कब्ज रहने पर एनिमा यन्त्र द्वारा पेट साफ कर दिया जाता था।

(घ)—खाने के लिये–सुबह में मौसमी फल-दूध, दोपहर में रोटी उबाली हुई सब्जी तथा शाम में रोटी और सूखा फल दिया जाता था।

इस प्रकार तीन महीने की चिकित्सा से रोगी को निश्चित लाभ हुआ। वह पूर्णतः स्वस्थ हो गया।

(c)—तीसरा क्षय का रोगी यह भी वारसली गंज का रहने वाला था। इन्हें क्षय का रोग हुए ७–८ महीने हुआ था। इतने कम समय में ही रोगी की दयनीय दशा हो गई थी। ज्वर बराबर बना रहता था। रात्रि में जाड़ा देकर ज्वर चढ़ जाता था। ज्वर मापने पर १०२-१०५ फै० हीट होता था। नाड़ी का स्पन्दन ११० या इससे भी अधिक हो जाता था। खांसी हर समय होता रहता था। खांसी में बदबूदार लाल पीत या मवाद की तरह कफ निकलता था। कभी-कभी खून का कै (वमन) हो जाया करता था। रोगी को एकाएक कभी सर्दी अथवा गर्मी मालूम होने लगता था। शरीर सुख गया था। और अत्यधिक कमजोर हो गया था।

इनकी भी वही चिकित्सा की गई, जो प्रथम रोगी का चिकित्सा किया गया था।

शनैः-शनैः रोगी के स्वास्थ्य में सुधार होता गया और वह दश महीने में इस चिकित्सा पद्धति से पूर्णतः लाभ किया।

वास्तव में यक्ष्मा का रोग पाचन प्रणाली तथा फेफड़ों की प्रक्रिया में विकृति होने से होता है। डाक्टर लोग इस बात को अच्छी तरह जानते हैं, कि गरिष्ट भोजन (मांस,

मछली, अंडा, पूरी, कचौड़ी, दारू आदि) से पाचन प्रणाली खराब हो जाती है। जिससे दूषित रस रक्तादि बनने लगते हैं। वैसे ही शुद्ध वायु न मिलने से भी फेफड़े और रक्त खराब हो जाते हैं फिर भी रोगी के विषय में भूल की जाती है, उन्हें तरह तरह के भोजन खाने की सलाह दी जाती है, तथा बराबर खाट पर लेटे रहने और सर्दी लग जाने की भय दिलाकर विशुद्ध वायु तथा कसरत से वंचित कर दिया जाता है। इस तरह रोगी को दोहरी मार पड़ती है।

गरिष्ट भोजन की अधिकता से पाचन क्रिया बिगड़ जाता है उससे खराब रस रक्तादि बनने लगता है। वह रक्त जब फेफड़े में शुद्ध होने के लिये पहुंचता है तो घर के अन्दर खुली और ताजी वायु न मिलने से वह (रक्त) काफी गंदा हो जाता है। जिससे रोगी के शरीर तथा फेफड़ों का और भी अनिष्ट होता है। ऐसी हालत में जब डाक्टर या वैद्य रोग शमन के लिये दवाइयों का प्रयोग करता है तो विष का ही काम करती है जिससे रोगी का हालत पहले से भी अधिक खराब हो जाता है। यही कारण है कि अधिकांश रोगी औषधि सम्प्रदायों से निराश और विफल होकर असमय में ही यम सदन की ओर चल पड़ते हैं।

प्राकृतिक-चिकित्सा पद्धति में रोगी को दवा न देकर शरीर के सफाई के कार्य में पूरी-पूरी सहायता दी जाती है। मल पहले पेड़ू के ईर्द गिर्द जमा होता है और वहीं से सड़कर सारे शरीर में फैलता है। अतः नियमित भोजन, विविध-स्नान, पट्टियां, उचित व्यायाम, विश्राम, प्रकाश और शुद्ध वायु द्वारा दूषित द्रव्य को निकाल दिया जाता है, जिससे

शरीर निर्मल होकर स्वस्थ और निरोग हो जाता है ।

[२—दम्मा]

यह रोग भी अनियमित जीवन यापन के कारण पाचन प्रणालियों की विकृति तथा मलावरोध के कारण होता है । मल पहले पेड़ू के ईर्द गिर्द संचित होता है, वहां वह सड़ता है, और उसका सड़ा हुआ भाग—दूषित द्रव्य (विषैली-गैस) रक्त में मिल जाता है । जब यह श्वांस नालियों के अवयवों में संचित होने लगता है, तब उसमें अनावश्यक गर्मी और खुश्की पैदा हो जाती है। जिससे श्वासावरोध होने लगता है। इस लक्षण विशेष को श्वास या दम्मा रोग के नाम से पुकारते हैं ।

यह रोग भी सादा आहार तथा प्राकृतिक स्नान से निश्चय दूर होता है । मेरे पास इस रोग से पीड़ित अनेकों रोगी आये । वे सब के सब अच्छे हो चुके हैं । यहाँ पर दो रोगियों का वृतान्त लिखता हूँ—

नन्कू दास, एकंजरपुर भागलपुर का फरवरी १६५० ई०-में मेरे "स्वास्थ्य प्रशिक्षण केन्द्र" में आया । वह १५ वर्षों से श्वास-दम्मा रोग से पीड़ित था । रोगी को श्वास लेने में इतना कष्ट होता था कि दस कदम भी चलना उसके लिये महा मुश्किल होता था ।

उसकी चिकित्सा नीचे लिखे अनुसार किया गया ।

(क)—सुवह में क्रियाक्रम से निपटने के वाद कटि स्नान लेकर

टहलने के लिये बताया गया तथा शाम में छाती के चौतरफ भिगी पट्टी लेने के बाद शक्ति के अनुसार कसरत और प्रायाणाम की विधि बतायी गई।

(ख)—प्रतिदिन १०–११ बजे दिन में घर्षण स्नान कराया जाता था।

(ग,—सप्ताह में तथा जिस दिन श्वास का वेग अधिक हो जाता था उस दिन वाश्प स्नान एवं कटि स्नान लेने के लिये बताया गया था।

(घ)—भोजन—शुरू में एक महीने तक केवल फलाहार पर रखा गया। फिर दूसरे महीने में एक समय फल दूसरे समय में रोटी और उबाली हुई सब्जी दिया जाता था।

इस प्रकार चार महीने की चिकित्सा से वह निरोग और स्वस्थ हो गया।

<u>दूसरा रोगी</u>- रामशरण गुप्ता, जमालपुर वर्क शोप में काम करता था। वह कई वर्षों से श्वास तथा कफ रोग से पीड़ित था। इन्हें खांसते समय कफ (बलगम) बहुत निकलता था। भूख बहुत कम हो गई थी। कमजोरी दिन प्रतिदिन बढ़ रहा था। मलावरोध का भी शिकायत हमेशा रहता था।

इसका भी चिकित्सा उपरोक्त प्रकार से की गई। चिकित्सा के आरम्भिक काल में ही रोगी को काफी लाभ हुआ और तीसरे महीने में वह पूर्णतः स्वस्थ होकर अपने नौकरी पर चला गया।

[३—जुकाम और खांसी]

यह रोग भी अनियमित खान-पान तथा अशुद्ध वायु

में रहने से होता है। यकृत दोष और गले की खराबी भी इस रोग का कारण है।

रोग होने का चाहे जो कारण गिने जावें किन्तु सभी में दूषित द्रव्य का संचय होने का कारण सदा कायम रहता है और उचित चिकित्सा न होने से अन्त में क्षय जैसे घातक रोग का रूप धारण कर लेता है।

शुरू-शुरू में दो-तीन दिनों का उपवास करने या फलादार करने तथा एनिमा यन्त्र द्वारा पेट की सफाई और वास्प स्नान लेने से यह रोग आराम हो जाता है। अगर रोग पुराना हो गया हो तो नीचे लिखे अनुसार चिकित्सा करना चाहिये।

(क)—सुवह में क्रिया क्रम से निपटने के वाद प्रकाश युक्त स्थानों में तैल मालिश और शक्ति भर कसरत कीजिये, फिर थोड़ी विश्राम कर घर्षण स्नान कीजिये।

(ख)—कब्ज रहने पर उपरोक्त क्रिया करने के पहले एनिमा यन्त्र द्वारा पेट की सफाई कर लेना चाहिये।

(ग)—शाम में भी क्रिया क्रम से निपटने के वाद कोई कसरत कीजिये अथवा कटिस्नान लेकर टहलने निकलिये।

(घ)—भोजन शुरू में केवल फल और रोटी फिर रोटी और उवाली हुई सब्जी खाना चाहिये।

(ङ)—सप्ताह में एक वार वाष्प स्नान तथा कटिस्नान लेकर उस दिन उपवास करना चाहिये।

[४—वात व्याधि-गठिया रोग]

शरीर के अवयवों में इकट्ठी दूषित द्रव्य जब शरीर के जोड़ों पर आक्रमण करती हैं, तब उसे वात ज्वर या गठिया का रोग कहते हैं।

यह रोग लक्षण भेद से कई तरह का होता है—ठोढ़ी का जकड़ना, स्वाद का नष्ट होना, बहरापन, सुनबहरी, मुंह का टेढ़ा होना, कमर का दर्द, सन्धि का दर्द, हाथ पैरों का कनकनाहट, सारा शरीर डंडा की तरह जकड़ जाना आदि ।

लक्षण भेद से रोग चाहे जिस तरह का हो, शरीर में जब अत्यधिक दूषित द्रव्य जमा हो जाता है, तभी यह रोग उत्पन्न होता है और सभी रोग की तरह इन रोगों में भी जब प्राकृतिक तरीके से विकार निकाल दिया जाता है, तब रोग समूल नष्ट होकर शरीर स्वस्थ हो जाता है ।

इस रोग का आक्रमण एकाएक होता है। किसी-किसी को इस रोग के आक्रमण के समय जाड़ा देकर ज्वर भी हो जाता है। इस रोग में किसी को एक अंग अथवा किसी-किसी को सारे शरीर के जोड़ों में दर्द व सूजन पैदा हो जाती है। धीरे-धीरे जोड़ों में दर्द अधिक हो जाता है। रोगी अङ्ग को हिला डुला नहीं सकता है। मैं यहां दो रोगियों का दृष्टान्त देता हूँ ।

पहला रोगी—जमालपुर का एक गठिया का रोगी मेरे पास चिकित्सा कराने के लिये आया। नाम था किसुन प्रसाद। वह ५–६ वर्षों से इस रोग से पीड़ित था। उसके

कमर और दोनों पैर के घुटनों में बहुत दर्द होता था। उसमें सूजन आ गई थी। जिससे रोगी चल फिर नहीं सकता था।

मैं पहले सप्ताह में रोगी को प्रति दिन रोग ग्रस्त स्थानों में वाष्प स्नान देकर भिगी पट्टी का प्रयोग किया। यह क्रिया सुबह-शाम दोनों समय किया जाता था। पन्द्रह दिनों की चिकित्सा से दर्द व सूजन कम हो गया फिर उन्हें सुबह में क्रिया क्रम से निपटने के बाद ५ मिनट के लिये कटिस्नान दोपहर में घर्षन स्नान और शाम में मेहन स्नान प्रति-दिन लेने के लिये कहा। सप्ताह में दो बार वाष्प स्नान भी लेने के लिये बताया गया था।

खाने के लिये शुरू में १५ दिनों तक केवल फलाहार पर रखा गया। फिर गेहूँ की रोटी और उबाली हुई सब्जी दिया जाने लगा।

इस प्रकार उपरोक्त चिकित्सा क्रम से ४५ दिनों में रोगी अपना खोया हुआ स्वास्थ्य पुनः प्राप्त किया।

दूसरा रोगी—मुंगेर चण्डी स्थान की एक ४२-४३ वर्षीया औरत वात व्याधि से पीड़ित थी। उन्हें प्रति समय हाथ पैरों में तथा शरीर के जोड़ों में कनकनाहट और दर्द होतो रहती थी। शरीर बराबर शीतल रहता था। शरीर का ताप मापने पर हमेशा ९५ या ९५॥ फे० हीट होता था। वह दवा खाते-खाते बिल्कुल निःशक्त हो गई थी। भूख मन्द पड़ गया था, कब्ज बराबर बना रहना था। पखाना बहुत थोड़ा काला रंग का और सख्त होता था। कभी-कभी दो-दो दिनों तक पखाना होता ही नहीं था। इस तरह रोगी की दशा बड़ी

दयनीय हो गई थी।

चिकित्सा के आरम्भ मे इन्हें प्रतिदिन सुबह में वाष्प स्नान देकर भिगी तौलिया से एक-एक अङ्ग को अच्छी तरह पोछ दिया जाता था। फिर ५ मिनट के लिये कटि स्नान दिया जाता था। दस-ग्यारह बजे दिन में प्रत्येक अङ्ग को रगड़ रगड़ कर स्नान कराया जाता था और शाम में एक डेढ़ घण्टे तक पेड़ू के चौतरफ मिट्टी की पट्टी दी जाती थी। भोजन मे केवल फल और दूध बताया था।

दूसरे सप्ताह के बाद ही रोगी के स्वास्थ्य में काफी उन्नति हुई। दस्त साफ होने लगा। पाचन क्रिया में काफी सुधार हुआ। जोड़ों का दर्द और झनझनाहट भी कुछ कम हुई।

इसके बाद रोगी को सुबह-शाम (दोनों समय) कटि स्नान, दोपहर में घर्षण स्नान और सप्ताह में एक बार वाष्प स्नान लेने के लिये बताया गया।

भोजन—सुबह में मौसमी फल, दूध तथा शाम में उबाली हुई सब्जी और चोकर सहित मोटे आटे की मोटी रोटी खाने के लिये बताया गया।

इस प्रकार शनैः-शनैः उनके स्वास्थ्य में उन्नति होती गई और वह तीन महीने में पूर्ण आरोग्य प्राप्त किये।

[५—रक्तचाप, Blood Pressure]

जब रक्त बहाने वाली स्रोतों में दूषित द्रव्य संचित होता है तो रक्त के दौरान में रुकावट

पैदा कर देती हैं। जिससे हृदय को ज्यादा काम करना पड़ता है। इसलिये रक्त का दबाव बढ़ जाता है या घट जाता है। बढ़े हुए रक्त चाप में शिर में चक्कर, दिल मे घबराहट, कई तरह की परेशानियाँ होती हैं; तथा घटे हुए रक्तचाप में शिर में हल्कापन, और खाली सा मालूम होता है। कमजोरी बढ़ जाती है। चलते समय हाथ पैर लड़खड़ाने लगता है।

रक्तचाप का एक रोगी—गोरगामा, भागलपुर के श्री युत अकलेश्वरी चौधरी—सितम्बर १६५० ई० को मेरे "स्वास्थ्य प्रशिक्षण-केन्द्र" में आये। वे ५—६ वर्षों से इस रोग से परेशान थे। वह कई अच्छे-अच्छे डाक्टरों से चिकित्सा करवाये, पर उससे कुछ लाभ नहीं हुआ। अन्त में वह औषधि सम्प्रदायों से निराश होकर ही मेरे पास चिकित्सा कराने के लिये आये।

उन्हें प्रतिदिन सुबह शाम में क्रिया क्रम से निपटने के बाद कटिस्नान देकर शक्ति भर कसरत (योगासन) कराया जाता था। दस-ग्यारह बजे दिन में घर्षण स्नान करता था।

भोजन में—शुरु के दो सप्ताहों तक केवल फल और रोटी दिया जाता था। इसके बाद रोटी उबाली हुई सब्जी मौसमी फल, दूध आदि सादा आहार पर रहा।

इस प्रकार उपरोक्त चिकित्सा क्रम से वह छः महीने में में स्वस्थ्य हुआ।

[६—लकवा]

लकवा रक्तचाप का ही बिगड़ा हुआ रूप है। जो लक्षण भेद से कई तरह का होता है। पहला—जो रक्तचाप

के बढ़ जाने की हालत में होता है और दूसरा— जो घटे रक्त चाप की हालत में होता है।

बढ़े हुए रक्त चाप में इस रोग का दौरा एकाएक होता है। रोगी का कोई एक अंग अथवा एक तरफ का सारा शरीर सुन्न हो जाता है और घटे हुए रक्त चाप में एकाएक दौरा तो नहीं होता है, परन्तु रोगी धीरे-धीरे कमजोर होने लगता है। कमजोरी बढ़ जाने पर रोगी का एक-एक अङ्ग सुन्न होने लगता है और अन्त में सर्वाङ्ग शरीर निर्जीव सा हो जाता है।

लकवा चाहे बढ़े हुए रक्त चाप के कारण हुआ हो अथवा घटे हुए रक्त चाप के कारण हुआ हो, दोनों का कारण एक ही है और उसका चिकित्सा भी एक ही होना चाहिये।

हिसुआ (स्टेशन-तिलैया, गया) के भागो साह, करीब आठ—दस वर्षों से सर्वाङ्ग लकवा रोग से पीड़ित था। शरीर का एक-एक अङ्ग शक्ति हीन और निर्जीव सा हो गया था। उसका खाना-पीना तथा पखाना पेशाब सब खाट पर ही लेटे ही लेटे होता था। वह अपनी चिकित्सा में दवा और डाक्टरों के पीछे अपनी सारी सम्पत्ति लगा दी, अन्त में निराश हो खाट पर पड़े-पड़े मृत्यु की घड़ियां गिन रहा था। इसी बीच उन्हें मेरे "स्वास्थ्य-प्रशिक्षण केन्द्र" का पता लगा और अपनी चिकित्सा के लिये मुझे बुलाया।

मैंने उसे प्रति दिन सुबह में एनिमा यन्त्र द्वारा पेट की सफाई करने, नौ बजे कमर के चौ तरफ भिगी पट्टी लेने, ग्यारह बजे तैल मालिश और घर्षण स्नान करने तथा सध्या मे मेहन स्नान लेने के लिये बताया।

भोजन में—प्रति-दिन सुबह में मौसमी फल और रोटी तथा रात्रि में सूखा फल और रोटी खाने के लिये बताया।

उपरोक्त चिकित्सा क्रम के फलस्वरुप उसके शरीर में धीरे-धीरे नूतन शक्ति का संचय होने लगा और कुछ ही काल में (ग्यारह महीने में) शरीर ने स्वाभाविक शक्ति प्राप्त कर ली; वह अच्छा हो गया।

दूसरा रोगी—नया गांव जमालपुर का अर्द्धांग लकवा (कमर-के नीचे का) था। उन्हें भी उपरोक्त रोगी का चिकित्सा क्रम करने के लिये बताया। वह भी इस चिकित्सा पद्धति से आठ महीने में अपना खोया हुआ स्वास्थ्य पुनः प्राप्त किया।

[७–पान्डु रोग Joundice]

यह रोग भी पाचन प्रणालियों की विकृति से (जिसमें यकृत भी सम्मलित है) होता है। पाचन शक्ति मन्द होने से रस रक्तादि खराब बनने लगते हैं। मलावरोध हो जाता है। मल आंतो में सड़ता रहता है और उसका तरल पदार्थ रक्त में मिलकर उसे विषाक्त बना देतो है। रक्त का स्वभाविक रंग बिगड़कर पीला हो जाता है। इसलिये पाण्डु रोगियों की त्वचा जहां पीली दिखाई पड़ती है वहां उनकी नसें भी काले रंग की दिखती हैं। रोग ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है त्यों-त्यों रोगी के प्रत्येक अंग पीला होने लगता है और सम्पूर्ण शरीर पीला हो जाता है। यहां तक कि कफ, थूक, मूत्र, पसीने आदि बिल्कुल पीला ही होता है। मुँह का स्वाद बिगड़

जाता है। शरीर दिन-प्रति-दिन कमजोर व क्षीण होने लगता है और ज्वर कुछ न कुछ बना रहता है। शिर व पेट में मीठा-मीठा कुछ दर्द भी रहता है। दुःसाध्य अवस्था में हाथ पैर, मुँह आदि में शोथ हो जाता है।

हाल ही में इस रोग से पीड़ित एक गरीब आदमी दहाड़ दास ढीमकी, खगड़िया का मेरे पास आया। उन्हें यह बीमारी बहुत दिनों से था। उसकी पाचन क्रिया बहुत ही खराब था। पखाना बहुत कम और कीचड़ के जैसा सड़ा हुआ बदबूदार होता था। कमजोरी बढ़ गई थी। चेहरा पीला, म्लान और मुरझाया हुआ था। उनके दोनों पैरों में शोथ भी हो गया था।

मैं उन्हें नित्य प्रति-दिन एनिमा लेकर पेट की सफाई करने, फिर दोनों समय कटिस्नान लेने, दस बजे घर्षण स्नान तथा सप्ताह में दो बार पेडू का वाष्प स्नान लेने के लिये बताया। साथ ही उन्हें प्रति-दिन कसरत करने और भोजन में रोटी, उबाली हुई सब्जी फल दूध आदि सादा आहार खाने के लिये बताया था। जिनका उसने ठीक तरह से पालन किया और उनसे उसे फायदा पहुँचा। करीब ४२ दिनों में वह पूर्णतः स्वस्थ हो गया।

[८—बवासीर Piles]

बवासीर खास कर मलावरोध के कारण होता है। टट्टी फिरते समय मल निकालने के लिये जब अधिक जोर लगाया जाता है और यही अवस्था कुछ दिनों तक बनी रहती

हैं तो फलस्वरुप मलाशय छिल जाता है और मस्सा निकल आता है। यही मस्सा बवासीर के नाम से पुकारा जाता है।

बवासीर दो तरह का होता है—खूनी और वादी, खूनी बवासीर से जब तब खून बराबर गिरता रहता हैं। खून गिरते समय रोगी अधिक कमजोर हो जाता है और बहुत पीड़ा का अनुभव करता है। वादी बवासीर में खून नहीं गिरता है, बल्कि दर्द अधिक होता रहता है। रोगी का शरीर सुस्त और कमजोर पड़ जाता हैं। शिर में दर्द बराबर कुछ न कुछ बना रहता है। अपान वायु की गति प्रतिलोम हो जाती है। रोगी का शरीर दुखता रहता है।

बवासीर खूनी हो अथवा वादी निम्नलिखित चिकित्सा करने से रोग शमन होकर शरीर स्वस्थ्य हो जाता है।

सबेरे नींद खुलते ही पखाना चला जाना चाहिये। पखाना फिरते समय, पखाना हो अथवा न हो, दोनों अवस्था में गणेश क्रिया द्वारा गुदा मार्ग को प्रति दिन साफ कर देनी चाहिये। नया रोग उपरोक्त क्रम से कुछ ही दिनों में दूर हो जाते हैं। अगर रोग पुराना हो, तो निम्नलिखित बातों पर ध्यान दीजिये—

(क)—प्रातः काल उठते ही मुँह हाथ धोकर थोड़ा जल पीजिये, तदन्तर थोड़ी देर तक पेट की मालिश कीजिये, बाद पखाना जाइये। पखाना हो अथवा न हो दोनों अवस्था में गणेश क्रिया द्वारा गुदा मार्ग को अवश्य साफ कर लिया कीजिये।

(ख)—क्रिया क्रम से निपटने के बाद, सुबह-शाम ५-५ मिनट के लिये कटिस्नान लीजिये, फिर शक्ति भर कसरत कीजिये। सप्ताह में एक बार स्थानीय वाष्प स्नान भी लेते रहिये।

(ग)—भोजन में गेहूँ की चोकर सहित मोटे आटे की मोटी रोटी, उबाली हुई सब्जी फल, दूध आदि खाइये, बाकी सभी चीजों से परहेज रखिये।

उपरोक्त कार्य-क्रमों पर चलने से दोनों प्रकार के बवासीर निश्चय आराम होता है। मेरे "स्वास्थ्य प्रशिक्षण-केन्द्र में माधोपुर मुंगेर के एक सज्जन चिकित्सा कराने के लिये आये। उन्हें खूनी बवासीर आठ दस वर्षों से था। वह कई अच्छे-अच्छे डाक्टरों से अपनी चिकित्सा करवा चुके थे। परन्तु उन्हें उससे कुछ भी लाभ नहीं हुआ। वह अपने रोग का दो बार सफल आपरेशन (नश्तर) भी करवाया था। किन्तु अन्दरुनी खराबी बने रहने के कारण आपरेशन के बाद भी रोग उभर जाता था।

मैंने उसे उपरोक्त चिकित्सा क्रम करने की सलाह दी। जिनका उसने ठीक तरह से पालन किया। जिससे दस-ग्यारह महीने में उसकी बिमारी सदा के लिये मिट गई।

[६—कोढ़ Leprosy]

यह रोग भी पाचन प्रणाली तथा फेफड़े की प्रक्रिया में विकृति होने से, अनियमित या अयोग्य भोजन करने से, प्रकाश और शुद्ध वायु की अभावों से तथा उचित कसरत या

शारीरिक परिश्रम न करने से होता है ।

पाचन शक्ति मन्द होने से भोजन का सात्मिकरण ठीक से नहीं होता, दूषित द्रव्य के ढेर इकट्ठे होने लगते हैं, जिनसे रोगी के शरीर के भीतर तनाव और गर्मी पैदा हो जाती है। उसमें अत्यन्त तीव्र रसायनिक पृथक्करण होने लगता है तथा रक्त में मिलकर भिन्न भिन्न अवयवों में फैल जाता है। वहाँ भीतरी दबाव के कारण विकार पदार्थ अवयवों में संगृहित होने लगता है। इसके अत्यधिक संग्रह होने से स्नायु-मंडल कमजोर हो जाती है। वे अपना पूरा काम नहीं कर पाते हैं। जिन अवयवों में दूषित द्रव्य का भार अधिक होता है उन अवयवों का स्नायु तन्तु मुर्दा हो जाता है। दूषित द्रव्य उन स्थानों से फूट निकलता है। जो अनेक तरह के रोग—फोड़ा फुन्सी, खाज-खुजली, एक्जिमा, चर्म के ऊपर सफेद या लाल-लाल चकत्ते, गलित कोढ़ आदि विभिन्न रूप और लक्षणों के कारण विभिन्न नामों से पुकारे जाते हैं।

गलित कोढ़ में पहले हाथ पैरों की ऊंगलियों का मांस गलना शुरु होता है। फिर धीरे-धीरे सारे शरीर का मांस गलना शुरु हो जाता है। अन्त में रोगी का सारा शरीर कटे वृक्ष की तरह ठूंठ दिखने लगता है। रोगी को अत्यन्त पीड़ा होता रहता है और इस तरह दारूण दुख से तड़प-तड़प कर वह अभागा पञ्च तत्व को प्राप्त हो जाता है।

यह रोग भी पिछले सभी रोगों की तरह प्राकृतिक उपायों द्वारा शरीर को विकार रहित कर देने से अच्छा हो जाता है।

इस रोग से पीड़ित जमालपुर के एक संभ्रान्त परिवार का आदमी मेरे पास आये। उस समय उनकी दशा बड़ी दयनीय थी। उनके दोनों हाथों की कई अंगुलियों के पोर गल गये थे। और अंगुलियों का बांकी हिस्सा बहुत फूल गया था। पैरों की दशा और भी खराब थी। वे बेशकल ढिम्मा से हो गये थे, तथा उनमें कई जगह बड़े-बड़े गहरे घाव हो गये थे। जिनमें से पीव निकलती रहती थी। पीठ तथा हाथ पैरों का त्वचा काला और मोटा हो गया था।

मैंने उसे निम्नलिखित चिकित्सा-क्रम बताया।

प्रतिदिन सुबह में एनिमा लेने के बाद ५ मिनट के लिये कटि स्नान लेने फिर शक्ति भर खुली वायु में कसरत करने, इसके दो घंटे बाद सारे बदन में मिटी का लेप लगाकर घर्षण स्नान करने तथा शाम को ५ मिनट का कटि स्नान लेकर कसरत करने के लिये कहा।

भोजन में उबाली हुई सब्जी, गेहूं की चोकर सहित आटे की मोटी रोटी, फल और दूध बताया।

सौभाग्य से उसने इन सभी नियमों का पालन किया। फलस्वरुप तीन वर्षों में वह अपना खोया हुआ स्वास्थ्य फिर से प्राप्त कर सका।

दूसरा रोगी—मुंगेर जेल के सिपाही भागवत सिंह जी को समूचे शरीर में सफेद कुष्ट रोग हो गया था। साथ ही उनके हाथ पैरों में सुन्नी (Insensibility) पैदा हो गई थी। वह मेरे स्वास्थ्य प्रशिक्षण केन्द्र में १२ सितम्बर १९५४ ई० को अपनी चिकित्सा के लिये आये।

मैंने उसे प्रतिदिन सुबह-शाम एनिमा यन्त्र के द्वारा पेट की सफाई करने, ९ बजे से ९॥ बजे तक धूप में सारे शरीर में गीली मिट्टी का लेप, बाद में घर्षण स्नान लेकर शक्ति भर कसरत करने तथा शाम को कटि-स्नान लेने के लिये बताया सप्ताह में दो बार वाष्प स्नान भी लेने के लिये बताया था।

भोजन में रोटी, उबाली हुई सब्जी और मौसमी फल बताया गया था।

इस प्रकार तीसरे महीने से उसकी हालत सुधरने लगी और आठ महीने के भीतर ही वह पूर्ण तन्दुरुस्त हो गया।

[१०—सुजाक और उपदंश,]
"Gonorrhea & Syphilis"

जनेन्द्रिय सम्बन्धी रोग भी शरीर में दूषित द्रव्य के संग्रह से ही होते हैं। लेकिन उन सबों में यौन अनैतिकता मनुष्य को सबसे ज्यादा खराबी की ओर ले जाता है। यौन रोग जनेन्द्रियों में ही उत्पन्न होते हैं और उसका पहला रूप है सुजाक। जनेन्द्रियों के भीतर घाव हो जाता है और उसमें मवाद भर जाता है। तीव्र औषधियों से रोग दब जाता है। दबा हुआ विष समय पाकर लकवा, क्षय आदि जैसे भयंकर रोग के रूप में प्रकट होता है।

उपदंश (गर्मी) सुजाक से भी भयंकर होता है। यह जनेन्द्रिय के ऊपर भयंकर फोड़े के रूप में प्रकट होता है। अगर शुरू में उपदंश का सही इलाज नहीं हुआ तो इसका विष

साधारण फोड़ा-फुन्सी से लेकर भयंकर कुष्ट रोगों के रूप में प्रकट होता है। अगर मनुष्य विषय सुख की क्षणिक लोभ को रोक ले तो उपरोक्त बिमारियों से सदा बचा रह सकता है।

सभी रोगों की तरह सुजाक और उपदंश का रोग भी प्राकृतिक स्नानों द्वारा निश्चय अच्छा होता है। असाध्य अवस्था में कुछ ज्यादा समय लगता है। यदि दुर्भाग्यवश उपरोक्त बीमारियां (सुजाक और उपदंश) हो गई हों तो निम्न-लिखित उपचार कीजिये।

(क) प्रातः काल उठते ही हाथ मुंह धोकर काफी पानी पीजिये, तदन्तर पेशाब पखाना करने जाइये। कभी-कभी एनिमा यन्त्र के द्वारा पेट की सफाई कर लिया कीजिये।

(ख) क्रिया क्रम से निपटने के बाद प्रतिदिन सुबह-शाम ५-७ मिनट के लिये कटि स्नान लीजिये। फिर बलाबल के अनुसार कोई भी कसरत कीजिये। तथा दोपहर में घर्षण स्नान और रात्रि में सोते समय १५ मिनट का मेहन स्नान लीजिये।

(ग) भोजन में पहले १५ दिनों तक केवल फल और दूध, फिर रोटी, उबाली हुई सब्जी, मौसमी फल और दूध आदि पर रहिये, बांकी सभी चीजों से परहेज रखिये।

उपरोक्त चिकित्सा कर्मों पर चलने से सुजाक और उपदंश निश्चय अच्छा होता है। मैं यहां दो रोगियों का उदाहरण देता हूँ।

पहला रोगी—कामेश्वर मिश्र, मुजफ्फरपुर। ये अक्टूबर

१६४६ ई० में मेरे पास आये। वह ५-६ महीनों से सुजाक रोग से पीड़ित थे। जनेन्द्रिय के भीतर घाव हो गया था। जिससे पेशाव के रास्ते से वरावर लसदार पीव निकलता रहता था। रोगी को असहनीय वेदना होती रहती थी। पेशाव जलन के साथ वून्द-वून्द होता था। रोगी का पाचन शक्ति वहुत पहले से खराव था और साथ ही मलावरोध की भी शिकायतें थी।

मैंने उसको उपरोक्त चिकित्सा क्रम करने के लिये वताया। जिससे शनैः-शनैः उनके स्वास्थ्य में सुधार होता गया और सात सप्ताहों में उनका रोग समूल नाश हो गया।

दूसरा उपदंश का रोगी—कासिम वाजार मुंगेर का था। उन्हें जनेन्द्रिय के उपर वहुत वड़ा जख्म हो गया था और उससे गाढ़ा पीला पीव निकलता रहता था। जनेन्द्रिय काफी सूजा हुआ था और उसमें असह्य वेदना होती रहती थी। तीव्र औषधियों द्वारा वार-वार रोग दवाने की चेष्टा की गई किन्तु उससे कुछ भी लाभ नहीं हुआ और अन्त में सारे शरीर में उपदंश (गर्मी) का घाव फूट निकला था। वह औषधि सम्प्रादायों से निराश एवं विफल होकर ही-मेरे "स्वास्थ्य प्रशिक्षण केन्द्र" में अपनी चिकित्सा के लिये आया हुआ था।

मैंने इसका भी उपरोक्त नियमानुसार चिकित्सा किया। इससे उसको वहुत लाभ हुआ। उपदंश के सभी लक्षण मिट गये और रोगी का स्वास्थ्य ४ महीने में विल्कुल सुधर गया।

[११—धातुश्राव और स्वप्नदोष]

यह रोग खास कर पाचन शक्ति के मन्द होने, शुद्ध वायु और अच्छा भोजन न मिलने, नियमित व्यायाम न करने तथा अश्लील पुस्तकों के पढ़ने और कुमार्गी होने से पैदा हो जाती है।

यह रोग नियमित रूप से खुले मैदान में कसरत करने, सादा और सात्विक आहार लेने से दूर हो जाता है।

अगर रोग पुराना हो गया हो तो निम्नलिखित बातों पर ध्यान दीजिये।

(च) प्रतिदिन सुबह क्रिया-क्रम से निपटने के बाद ५-७ मिनट का कटि स्नान लीजिये फिर शक्ति भर कसरत कीजिये।

(छ) कब्ज रहने पर कभी-कभी एनिमा लेकर पेट की सफाई कर लिया कीजिये।

(ज) भोजन में—रोटी, उबाली हुई सब्जी, फल और दूध लीजिये। बाकी सभी चीजों से परहेज रखिये। भोजन हमेशा स्वल्प मात्रा में करना चाहिये जो शिघ्र पच जाय।

(झ) रात्रि में सोते वक्त १०-१५ मिनट का मेहन स्नान लीजिये फिर ईश्वर का चिन्तन करते हुए सो जाइये। विचारों को हमेशा पवित्र रखिये। मनुष्य की सुगत्ति या दुर्गति उसके भले या बुरे विचारों पर निर्भर करती है।

[१२—कब्ज, संग्रहणी, पेचिश]

कब्ज का एक साधारण लक्षण है—

बहुत कम पखाना होना। किसी-किसी को पखाने में बहुत कांखना पड़ता है तब कहीं थोड़ा सा मल उतरता है अथवा गनेश क्रिया द्वारा (गुदा मार्ग में उंगली डालकर) मल निकालने पर बाहर निकलता है। अन्यथा नहीं।

किसी-किसी को दो-दो या तीन-तीन दिनों तक पखाना ही नहीं होता जब उन्हें पखाना होता भी है, तो बहुत दुर्गन्ध-युक्त, काला और सूखा हुआ होता है। ऐसे लोगों का शरीर दिन प्रतिदिन कब्ज के कारण निःशक्त और कमजोर होता जाता है। अधिक भोजन करने पर भी, भोजन का सात्मिकरण न होने से रस रक्तादि में कमी होती जाती है और कभी न कभी किसी भयंकर व्याधि का आखेट हो जाता है।

कब्ज का दूसरा रूप है—दिन में कई बार पखाना जाना। बार-बार पखाना जाने पर भी हाजत बनी ही रहती है, दस्त कम उतरता है। मल फेने वाला और चिकना होता है ऐसी दशा को संग्रहणी कहते हैं।

कब्ज का तीसरा लक्षण है-आंव का दस्त होना। टट्टी जाने पर बहुत मरोड़ दर्द के साथ आंव या रक्त मिश्रित थोड़ा सा बदबू-दार मल निकलता है। टट्टी जाने की शंका इस कदर मालूम होता है मानो तुरन्त हो जायगा या हो गया। जब रोग अधिक उग्र हो जाता है, तो रोगी पेट दर्द से छटपटाने लगता है।

शरीर में जाड़ा देकर ज्वर हो आता है। इन लक्षणों को आमातिसार या पेचिश कहते हैं।

इन सभी रोगों में भूख मर जाती है। वायु अधिक बनती है। श्वांस में दुर्गन्धी आती है। शरीर कमजोर हो जाता है। नाड़ी की चाल तेज और क्षीण हो जाती है।

इस रोग का मूल कारण पाचन प्रणाली का मन्द होना, अनियमित भोजन और व्यायाम तथा शुद्ध वायु न मिलना है।

अतः इस रोग से मुक्ति पाने के लिये निम्नलिखित बातों पर ध्यान दीजिये।

(क) कब्ज की अवस्था में प्रति दिन सुबह क्रिया क्रम से निपटने के बाद ५-७ मिनट तक का कटि स्नान लीजिये, फिर किसी मैदान में जहां शुद्ध वायु आता जाता हो, शक्ति भर दौड़िये अथवा कोई भी कसरत कीजिये। रात्रि में सोते वक्त भिगी कमर पट्टी लीजिये। सुबह उठने पर पट्टी खोल दीजिये और थोड़ा पानी पीकर टट्टी-पेशाव करने जाइये। इस प्रकार चिकित्सा विधि पर चलने से पुराना और सख्त कब्ज भी आसानी से नाश हो जाता है और शरीर प्राकृतिक अवस्था में लौट आता है।

(ख) संग्रहणी और पेचिश की अवस्था, में सुबह-शाम हल्का उष्ण पानी का एनिमा लीजिये। दिन में कई बार गरम और ठंढे पानी का बारी-बारी से ३-३ मिनट का कटि स्नान लीजिये। बाद में शारीरिक शक्ति के अनुसार शरीर में

गर्मी लाने के लिये कपड़ा ओढ़ कर विश्राम कीजिये अथवा कोई भी कसरत कीजिये।

(ग) भोजन में—कब्ज की अवस्था में रोटी, उबाली हुई सब्जी फल, दूध आदि लीजिये, संग्रहणी और पेचिश की अवस्था में पहले एक या दो दिनों का उपवास कीजिये, फिर जब तक रोग अच्छा न हो जाय, तब तक केवल मठा कल्प अथवा दही भात पर रहिये। इसके बाद धीरे-धीरे सादा आहार पर आ जाना चाहिये।

[१३—हैजा Cholera.]

बस्ती में किसी एक को हैजा होने पर वह समूचे गांवों में फैल जाता है और अधिकांश व्यक्तियों को काल के गाल में पहुँचा देता है। यही कारण है कि लोग हैजा को बहुत भयंकर रोग समझते हैं; लेकिन दर असल में यह उतना भयंकर नहीं है, जितना लोग समझते हैं। हैजा लोगों की लापरवाही और गलत आहार विहार के कारण होता है।

आज अधिकांश लोगों का बल्कि यों कहा जाय कि सैकड़े प्रतिशत लोगों का पाचन-प्रणाली बराबर खराब रहती है, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी। किसी को दस्त होता है किसी को शूल या पेचिश की शिकायत रहती है, तो किसी को कब्ज। फिर भी लोग बिना सोचे समझे भोजन पर भोजन खाते रहते हैं। गर्मी के दिनों में इसकी मात्रा और भी बढ़ जाती है। इन दिनों तरह-तरह के फल पकते हैं। जिह्वा के वशीभूत हो, बिना भूख के भी जो दिल में आया कच्चा, खट्टा,

सड़ा, गला, फल खाते रहते हैं। गर्मियों में यों ही विशेष भोजन की चाह नहीं रहती है, मन्दाग्नि हो जाती है, साथ ही पाचन शक्ति पहले से खराब रहता ही है। नतीजा यह होता है कि ये सभी भोजन भिन्न-भिन्न गुणों को लेकर जब आंतों में एकत्र होते हैं तो यह प्रत्येक विपरीत गुण के कारण आंतों में जहर पैदा कर देती है जिसमें आंतों की रही सही शक्ति भी खत्म हो जाती है। फलस्वरूप के और दस्त होना शुरू हो जाता है। और उपरोक्त शिकायत जितने भी लोगों में रहते हैं, उन सभों को यह रोग हो जाता है। ऐसे मौके पर इसे फैलाने में जलवायु भी सहायक हो जाता है। गर्मी के दिनों में नदी, पोखर आदि में पानी बहुत कम रह जाता है, जो सड़कर वायु को विषम बना देती है। बरसात में भी घर के अगल-बगल में पानी जमा हो जाता है और उन में कूड़ा-कचड़ा सड़-कर वायु को दूषित कर देती है इस तरह यह समूचे गांवों में फैल जाती है।

हैजा रोग नीचे लिखे चिकित्सा विधि से अच्छा होता है।

(क) सर्व प्रथम एनिमा द्वारा रोगी का पेट साफ कर दीजिये। एनिमा देने से आंतों में फैली हुई जहर घुल-घुल कर निकल जाता है, जिससे उद्वेग क्रिया शांत हो जाती है और के तथा दस्त का आना रुक जाता है। साथ ही एनिमा का गरम पानी किडनियों को विशेष रूप से प्रभावित करती है जिससे रोगी को खुल कर पेशाब हो जाता है। इसलिये बिना विलम्ब किए दिन में दो-तीन बार हलका गर्म पानी

से एनिमा यन्त्र द्वारा रोगी के आंतों की सफाई जरूर कर देनी चाहिये। पेट में पूरा (२।।-३ सेर तक) पानी चढ़ाना चाहिये. जिससे मल अच्छी तरह धुल जाय ।

(छ) एनिमा के वाद रोगी को सर्वांग हल्का वाष्प स्नान देकर कुछ देर तक रोगी के वदन को कम्वल से ढके रखना चाहिये। जव शरीर में पसीना आ जाय, तव गुन गुने पानी से प्रत्येक अंग को पोछ देना चाहिये ।

हैजे की वीमारी में खून आंतों के चारों ओर जमा हो जाता है उस जल का अंश पखाने के रास्ते वाहर होता रहता है। इसीसे रोगी का शरीर ठंडा पड़ जाता है। इसलिये यह आवश्यक है कि खून को धमनियों में लौटाया जाय जिससे शरीर की गर्मी वनी रहे। वाष्प स्नान से शरीर की उपरोक्त दोनों हालतें ठीक हो जाती हैं। इसलियें दिन में दो-तीन वार वाष्प स्नान देना लाभदायक होता है ।

(ज) वाष्प स्नान के वाद रोगी को कटि स्नान देना चाहिये। कटि स्नान देते समय रोगी का दोनों पैर गरम पानी में डूवा रहे और उपर से सारा वदन कम्वल या कोई गरम कपड़ा से ढका रहे। इस तरह हरएक वाष्प स्नान के वाद रोगी को शक्ति के अनुसार ५-६ मिनट तक का कटि स्नान देते रहना चाहिये। रोगी के हाथ पैरों में सनसनी (वायी) लगने लगती है, उन-उन अंगों को वरावर गरम पानी के वोतलों से सेंकते रहना चाहिये।

(झ) भोजन में—जव तक रोगी अच्छा न हो जाय उसे पानी में नीवू का रस निचोड़ कर पिलाते रहना चाहिये। पानी

पीने के साथ ही अगर कै हो जाय तो घबराने की कोई बात नहीं है। प्यास मिटाने के लिये रोगी को वर्फ का टुकड़ा चूसने के लिये देना चाहिये। जब रोगी की स्थिति काबू में आ जाय और पेशाव का उतरना शुरू हो जाय, साथ ही के और दस्त का होना रुक जाय, तब उसे छेने के पानी पर २४ घंटे रखना चाहिये, फिर दो दिनों तक केवल मठा (दही का घोर) पर रहना चाहिये। इसके वाद सादा और सात्विक आहार किया जा सकता है।

इस प्रकार उपरोक्त चिकित्सा विधि से हरएक अवस्था में हैजा रोग अच्छा हो सकता है। यहां मैं दो स्थानों में फैले हुए हैजा रोग का हाल सुनाता हूं।

सन १६५७ ई०में मुंगेर टाउन के आस पास रामगंज, नलोखा, मिलकी चक, जानकी नगर, नया टोला, बांक आदि गांवों में हैजा रोग का प्रकोप फैला हुआ था। उन वस्तियों से बहुत से रोगी मेरे पास आये और वे सभी मेरे बताये चिकित्सा विधि द्वारा अच्छा हुए। यहां मैं हैजा रोग से पीड़ित तीन रोगियों का (गणेश प्रसाद, बुलाकी महतों की स्त्री, और अनजित महतों का) वृतान्त सुनाता हूं जिन्हें डाक्टरों ने लाइलाज कह कर छोड़ दिया था। उन सबों की दशा बड़ी दयनीय थी। नब्ज खींच गया था, आंखे धंस गई थी, बार-बार कै और दस्त होता था। कै और दस्त में मांड़ जैसा पानी आता था। हाथ पैरों में वाधी लगता था। रोगी का शकल इस कदर खराब हो गया था कि डर से घर का कोई आदमी उसके नजदीक नहीं जाता था।

मैंने उन सबों को पहले गरम पानी का एनिमा दिया, जिससे तुरन्त दो-तीन टट्टी हुआ। फिर सभी को वाष्प स्नान दिया। स्नान देते समय कम्बल से रोगी का प्रत्येक अंग अच्छी तरह ढका रखा। शरीर में पूरा पसीना आ जाने पर एक-एक अंगों को भिंगी तौलिया से पोछ दिया गया। इसके बाद फिर ५–५ मिनट का कटि स्नान दिया। इन सभी स्नानों से रोगी की भयंकरता टल गई और स्वास्थ्य में काफी सुधार हुआ।

फिर तीन घन्टे के बाद मैं उन सबों को उपरोक्त चिकित्सा विधि करने की सलाह दी। इस बार रोगी बड़ी उत्साह से चिकित्सा का पालन किया और उनसे सभी को फायदा हुआ। रोग के सभी लक्षण मिट गये।

दूसरा उदाहरण—मुझे जगदीशपुर, जिला-भागलपुर में कुछ दिनों तक प्राकृतिक-चिकित्सा के प्रचारार्थ ठहरने का मौका मिला था। उसी समय (जुलाई १९५२ ई० में) जगदीशपुर तथा उसके आस-पास के गांवों में हैजा का प्रकोप बहुत जोरों में फैला हुआ था। डाक्टरों के अथक चेष्टा करने पर भी इस रोग से पीड़ित अधिक व्यक्ति शिकार हुए।

मेरे पास इस रोग से पीड़ित २२ व्यक्ति अपनी चिकित्सा के लिये आये और उनमें से सभी (शतप्रतिशत) मेरे बताये उपरोक्त चिकित्सा विधि से स्वस्थ हुए। यह स्मरण रहे कि वे सभी रोगी औषधि सम्प्रदायों से ठुकराये हुए थे।

भोजन में—सभी को २४ घन्टे तक दही का पानी, दूसरे दिन मठा और तीसरे दिन दही भात खाने के लिये बताया था।

[१४—मलेरिया ज्वर]

मलेरिया ज्वर खास कर दूषित जलवायु तथा अयोग्य खान-पान के कारण होता है। यह उन स्थानों में अधिक होता है जहां की जलवायु कमजोर और नर्म रहती है। जहां सालो भर खेतों या मेड़ों में पानी का जमाव रहता है वहां अनेक तरह के पदार्थ पानी में सड़ कर उसकी विषैली गैस वायु के साथ श्वास के द्वारा शरीर में प्रवेश कर खून को विषाक्त बना देती है। साथ ही गलत आहार-विहार के कारण पाचन शक्ति मन्द हो जाती है जिससे शरीर के विभिन्न अवयवों में दूषित द्रव्य अधिक मात्रा में संगृहित हो जाते हैं, तभी मलेरिया ज्वर होता है।

यह कहना कि मलेरिया ज्वर "एनोफिलिस" जाति के मच्छरों के काटने से होता है बिल्कुल भ्रमात्मक प्रचार है। अनेक व्यक्तियों को जिनका आहार-विहार नियमित रहता है "एनोफिलिस" जाति के मच्छरों के काटने पर भी मलेरिया नहीं होता है।

जब शरीर में अपरिमित रूप मे विकार भर जाता है तो सबसे प्रथम उसकी पाचन क्रिया बिगड़ जाती है। प्लीहा और जीगड़ बढ़ जाता है। भोजन का सही रूप में पाचन न होने से खाये हुए पदार्थ का रस-रक्तादि धातुओं में कमी आ जाती है जिससे रोगी का शरीर दिन प्रतिदिन क्षीण होने लगता है। रोग निवारक शक्ति नहीं रह जाती है। शरीर में अस्थि-पंजर मात्र रह जाता है। सही इलाज नहीं होने से अधिकांश रोगियों का प्राणान्त हो जाता है।

इस रोग में—शुरू में जाड़ा देकर बुखार चढ़ता है, लेकिन पुराना होने पर बिना जाड़ा या कम्पन के भी बुखार बना रहता है। मलेरिया ज्वर बहुतों को दिन में एक बार, दो बार, एक दिन बाद देकर, दो दिन बाद देकर आता है।

रोज आने वाले बुखार को एकतरा, एक दिन बाद देकर आने वाले बुखार को तीजारी तथा दो दिन बाद देकर आने वाले ज्वर को चौथिया कहते हैं।

शरीर में विभिन्न रूपों और लक्षणों में मलेरिया ज्वर प्रकट होता है, उसी के अनुसार उसका नाम भी है।

(अ) सविराम मलेरिया Intermittent—बार-बार ज्वर आनेवाले को सविराम मलेरिया कहते हैं। इसमें जाड़ा देकर ज्वर चढ़ता है। बुखार के अवस्था में अत्यधिक जाड़ा लगने लगता है। जाड़ा से रोगी का दांत कट-कट बजने लगता है। ज्वर १०१. से १०६. डिग्री हो जाता है। अंग-प्रत्यंग में दर्द होने लगता है। सांस लेने में अधिक तकलीफ होती है। प्यास अधिक लगती है। यह अवस्था दश-पन्द्रह मिनटों से लेकर दो-चार घंटों तक रहता है, बाद पसीना देकर ज्वर उतर जाता है।

(ब) अल्पविराम मलेरिया Remittent malaria—यह ज्वर शरीर में कुछ न कुछ बराबर बना रहता है और घटता बढ़ता रहता है। ज्वर चढ़ते समय रोगी को जाड़ा महसूस होता है। अंग-प्रत्यंग में दर्द, ओठों का सूखना, मन्दाग्नि, कब्ज आदि की शिकायत बना रहता है। १०० से १०५

फै० डीट तक रहता है । ज्वर के समय पेट में कुछ दर्द भी रहता है ।

(स) संघातिक मलेरिया Malignant malaria—का लक्षण शुरू में सविराम मलेरिया से मिलता है । अंग-प्रत्यंग मे दर्द व जलन होता है । यह ज्वर काफी जाड़ा देकर चढ़ता है और बहुत देर के बाद पसीना देकर उतरता है । कभी-कभी यह अल्प विराम मलेरिया के रूप में बदल जाता है, और साथ ही साथ कभी-कभी अतिसार भी हो जाता है । पित्त का उल्टा होता है, चेहरा पाण्डु रोग के जैसा लगने लगता है । कभी-कभी यह भयंकर टायफायड के रूप में बदल जाता है और सही इलाज नहीं होने पर रोगी इस दुनियां से विदा हो जाता है ।

मलेरिया चाहे जिस रूप और लक्षणों में प्रकट हुआ हो—निम्नाङ्कित चिकित्सा विधि से रोगी निरोग और स्वस्थ हो जाता है ।

(क) बुखार चढ़ने के समय कोई भी उपचार करना अच्छा नहीं होता है, इसलिये ज्वर चढ़ने के पहले अथवा जब ज्वर उतरने पर हो, तब ही उपचार शुरू करना चाहिये ।

(ख) ज्वर चढ़ने के कुछ समय पहले अथवा उतरते समय सारा शरीर भिंगी तौलिया से पोंछ दीजिये और रोगी के शक्ति के अनुसार ५-७ मिनट का कटि स्नान दीजिये । यह स्नान प्रतिदिन आवश्यकतानुसार कई बार लेना चाहिये । हरएक स्नान के बाद रोगी को थोड़ा कसरत करना

चाहिये अथवा मोटा कपड़ा या कम्बल ओढ़कर बदन में गर्मी लाना चाहिये।

(ग) हरएक तीसरे या चौथे दिन सारे शरीर को गीली पट्टी या सहने लायक गरम पानी का कटि स्नान देना चाहिये। स्नान देते समय रोगी के शिर पर ठंडा पट्टा लपेटा रहे। सारा शरीर तथा स्नान करने वाली टब कम्बल से अच्छी तरह ढका रहे। पसीना आ जाने पर टब से निकलकर प्रत्येक अंग को भिगी तौलिया से अच्छी तरह पोंछ लेना चाहिये।

(घ) कब्ज रहने पर बराबर एनिमा यंत्र द्वारा पेट की सफाई कर लेना चाहिये।

(ङ) भोजन में—जब तक ज्वर का दौरा बना रहे, तब तक केवल फलाहार करना चाहिये। जब ज्वर का आना रुक जाय और कुछ शारीरिक शक्ति भी आ जाय, तब सादा आहार पर आ जाना चाहिये।

उपरोक्त चिकित्सा विधि से मैं इस रोग से पीड़ित अनेक व्यक्तियों को अच्छा कर चुका हूँ। अतः मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि अन्य रोगों की तरह मलेरिया रोग भी प्राकृतिक-चिकित्सा विधि से निश्चय अच्छा होता है।

[१५—ज्वर या बुखार]

सभी प्रकार के बुखार मुख्यतः रक्त में बढ़े हुए अनावश्यक गर्मी के प्रकोप से ही होते हैं। पाचन शक्ति के

मन्द होने से आंतों में दूषित द्रव्य के ढेर इकट्ठे होने लगते हैं, जिससे शरीर के भीतर तनाव और अधिक गर्मी पैदा हो जाती है। ये दूषित द्रव्य ऋतु परिवर्तन, बाह्य आघात, मानसिक उद्वेग आदि कारणों से रक्त में मिल जाता है। उसमें अनावश्यक गर्मी और प्रदाह उत्पन्न कर देता है। इसे ही हम ज्वर या बुखार का लगना कहते हैं।

इन विकारों को दबाने के लिये जब तरह-तरह की बदपरहेजियां बढ़ती जाती है। तीक्ष्ण दवाइयाँ, जुलाब आदि व्यवहार में लायी जाती हैं, तब विभिन्न अवयवों में फैली हुई दूषित द्रव्य अपनी असली जगह (पेड़ू) की तरफ बड़े वेग के साथ वापिस जाने लगता है। जिससे आंतों पर इसका विशेष रूप से प्रभाव पड़ता है। उसमें सूजन और दर्द पैदा हो जाती है, और पतले दस्त भी आना शुरू हो जाता है। इसे ही हम ज्वर का विगड़ा हुआ रूप। टायफयाड आदि नामों से पुकारते हैं।

इस रोग में पेट के दायी यकृत के नीचले भाग को दबाने से दर्द का होना, पेट में वायु का गड़गड़ाना, खून मिश्रित अथवा हल्दी के रंग जैसा पखाना होना, ज्वर १०१-१०५ डिग्री के बीच घटते-बढ़ते रहना आदि प्रधान लक्षण है।

शरीर में लाल-लाल फुन्सी का होना, बकबकी, बेहोशी का होना, दस्त चावल के धोवन के जैसा होना, ज्वर १०५-१०६ फै० हीट तक बना रहना, नाड़ी का चाल तेज और

क्षीण हो जाना आदि इस रोग की खराब अवस्थाएं हैं।

नया टोला—चौक, मुंगेर के श्री युत चोढ़न मिस्त्री की आठ वर्षीय बालिका ३४ दिनों से टायफायड रोग से पीड़ित थी। डाक्टरों के अनवरत चेष्टा करने पर भी दिन प्रति-दिन उनकी दशा बड़ी दयनीय होती जा रही थी। अन्त में वह डाक्टरी चिकित्सा से निराश होकर ता० २२ मार्च १९४७ ई० को मुझे रोगी देखने के लिये बुलाया गया।

उस समय रोगी की हालत बहुत खराब थी। शरीर में अस्थिपंजर मात्र रह गया था। ज्वर १०५-१०७ फै० हीट रहता था। पेट के दायी ओर तथा कमर में बराबर दर्द होता था। भूख मर गई थी। दिन रात में आठ दस टट्टियां हो जाती थी। वायु अधिक बनता था। वह बराबर बेहोश रहती थो, और बेहोशी की अवस्था में रह-रह कर प्रलाप कर उठती थी।

मैं उसे प्रति-दिन सुबह मे भिगी तौलिया से प्रत्येक अंगों को पोछ कर ५—७ मिनट तक भिगी कमरपट्टी लेने के लिये बताया। फिर दोपहर में दस मिनट तक के लिये सर्वांग भिगी चादर की पट्टी और शाम में पेट के उपर मिट्टी की पट्टी लेने के लिये बताया।

भोजन में—सिर्फ पानी के साथ कमला नीबू का रस थोड़ी-२ मात्रा में कई बार लेने के लिये बताया था। बांकी सभी चीजों से परहेज रखी जाती थी। प्यास लगने पर केवल सादा पानी पीने के लिये दिया जाता था।

प्रथम सप्ताह में ही उपरोक्त चिकित्सा विधि से पेट व कमर का दर्द, वायु का बनना और दस्त की शिकायतें बहुत कम हो गई। शरीर का ताप धीरे-धीरे कम होकर १००°—१०२° फै० हीट तक आया।

इस प्रकार शनैः-शनैः तीन सप्ताहों के अन्दर रोग के सभी लक्षण मिट गये। शरीर में नूतन शक्ति का आविर्भाव हुआ। बालिका स्वस्थ और प्रसन्न चित्त दिखने लगी।

सभी प्रकार के बुखारों में उपरोक्त चिकित्सा विधि से निश्चय लाभ होता है। ज्वर के अवस्था में चिकित्सा करते समय नीचे लिखे बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

(क)—जब तक ज्वर रहे रोगी को खाने के लिये कुछ भी नहीं देना चाहिये। इससे बुखार का जहर पच कर रोगी आरोग्य के तरफ अग्रसर हो सकेगा। अगर रोगी अत्यधिक कमजोर हो गया हो, उस अवस्था में केवल फलों का रस पानी के साथ दिन में कई बार देना चाहिये।

(ख)—बुखार की हालत में रोगी जितनी बार पानी पीने की इच्छा प्रकट करे, उतनी बार काफी मात्रा में पानी पीने के लिये देना चाहिये।

(ग)—अगर रोगी सबल हो और ज्वर १००°—१०२° फै० हीट से ज्यादा न हो तो, उस अवस्था में वाष्प स्नान देकर तुरन्त कटि स्नान देने से विशेष लाभ होगा। वाष्प स्नान देने के बाद पहले रोगी के प्रत्येक अङ्गों को भिगी तौलिया से पोछ देना चाहिये।

(घ)—कमजोरी तथा विशेष ज्वर की अवस्था में रोगी को वाष्प स्नान नहीं देना चाहिये। केवल दिन में कई वार भिंगी तौलिया से सारे बदन को पोछ कर भिंगी कमर पट्टी, सर्वाङ्ग भिंगी पट्टी, पेट के उपर मिट्टी की पट्टी, मेहन स्नान आदि का ही प्रयोग करना चाहिये। इससे बुखार का जहर शरीर से निकल जायगा, और रोगी की तन्दुरुस्ती सुधर जायगी।

[१६—दाँत, कान और आंख के रोग]

मैं कई वार लिख चुका हूँ कि सभी रोग का कारण शरीर में स्थित दूषित द्रव्य होता है। यह (दूपित द्रव्य) पाचन शक्ति के मन्द होने से उत्पन्न होता है और उसका प्रभाव सबसे पहले दांतों पर पड़ता है। दांतों में कायी (मैल) जमने लगता है और मुख से गन्दी बू आने लगती है, ये दोनों विकार "हाजमा का खराव होना" सूचित करते हैं। पाचन शक्ति के मन्द होने से पेड़ू में मलों का सञ्चय होना शुरू हो जाता है और उसमें परिवर्तन होने लगता है। उससे उत्पन्न हुआ विकार पेड़ू से उठकर उपर को आता है और दांतों में जमने लगता है। जब इसका प्रबल दबाव दांतों में होने लगता है, तब रोग की तीव्र अवस्था उत्पन्न हो जाती है। दांत का अन्दरूनी भाग फूल जाता है और उसमें से रक्त मिश्रित विकार निकलना शुरू हो जाता है। दांतों का जड़ धीरे-धीरे ढीले पड़ जाते हैं और एक-एक कर सभी दांते गिर जाते हैं। इन लक्षणों को पायरिया का रोग कहते हैं।

इसी प्रकार जब दूषित द्रव्य का आक्रमण कानों में

होता है तो, शब्द ले जाने वाली स्नायु तन्तु में प्रदाह उत्पन्न हो जाता है। जिससे कान के भीतर अत्यन्त वेदना और सूजन पैदा हो जाती है। यही अवस्था कुछ दिनों तक बनी रही तो कानों के भीतर व्रण हो जाता है, जिसे कान का बहना कहते हैं। इसका उचित इलाज न होने से कान की श्रवेन्द्रिय शक्ति नष्ट हो जाती है जिससे बहरापन का रोग हो जाता है

और जब दूषित पदार्थ नेत्रों में आक्रमण करती है तो सबसे पहले आंखों में लाली का आना, (जिसे आंख का उठना कहते हैं) आंखों में जल या कीच का निकलना, पलकों का जुट जाना. शोथ, दर्द आदि प्रकट होते हैं। इन लक्षणों में जब तीक्ष्ण औषधियों का प्रयोग किया जाता है, तब वे दूषित पदार्थ नेत्र के अन्दरूनी भागों में छिप (दब) जाती हैं और फिर कभी नये कारण उपस्थित होने पर यह उभर आती है और नेत्रों के अन्दर फैल जाती हैं, जिससे दृष्टि शक्ति कमजोर हो जाती है। इस अवस्था को दृष्टि चीणता (Myopia) का रोग कहते हैं।

अगर दूषित द्रव्य दृष्टि बिन्दु के मध्य आ जाता है तो; कोई एक पदार्थ देखने पर वहां एक से अधिक पदार्थ दिखने लगती हैं। इस अवस्था को द्विदृष्टि (Double-Vision) कहते हैं।

आंख के पुतली के मध्य नीचे स्नायु तन्तु में जब दूषित द्रव्य चला जाता है, तब उसे काला मोतिया बिन्द कहते हैं।

और जब दूषित द्रव्य के प्रभाव से कनिका के स्नायु

तन्तु में जो तनाव होता है उसे हरे रंग का मोतिया विन्द (Glaucoma) कहते हैं।

नेत्रों के पुतली में जो-जो मुद्दत से धुंधला रंग का विकार जमता रहता है उसे श्वेत मोतिया-विन्द (Gray—Cataract) कहते हैं।

इन सभी रोगों मे (दांत, कान और आंख के रोगों में) निम्नलिखित चिकित्सा करना चाहिये—

(प)—प्रतिदिन क्रिया क्रम से निपटने के वाद दस मिनट तक कटि स्नान लीजिये, फिर शक्ति भर कसरत कीजिये या तेजी से टहलिये अथवा दौड़िये।

(फ)—भोजन करने के दो घन्टे वाद प्रति-दिन दो बजे रीढ़ की गीली पट्टी (पीठ के उपर नितम्ब से गर्दन तक) आधा घन्टा तक लीजिये, फिर भिंगी तौलिया से सारे वदन को पोछ लीजिये।

(ब)—शाम में क्रिया क्रम से निपटने के वाद १०-१५ मिनट का मेहन स्नान लीजिये।

(भ)—सप्ताह में एक वार वाष्प स्नान लीजिये और उस दिन उपवास कीजिये।

(म)—जव भी कव्ज की शिकायत हो एनिमा यन्त्र द्वारा पेट की सफाई आवश्य कीजिये।

(य)—जिस अङ्ग में तकलीफ हो उन अङ्गों में प्रति-दिन हल्का वाष्प स्नान देकर भिंगी पट्टी वांधिये। पट्टी जव तक आरामदेह मालूम पड़े तवतक वांधे रहना चाहिये।

(२)—भोजन में – एक महीना तक केवल फलाहार कीजिये। बाद में रोटी उबाली हुई सब्जी थोड़ी मात्रा में तथा मौसमी फल पर्याप्त मात्रा में लीजिये। यह ध्यान रहे कि सभी भोजन मिलाकर भूख से ज्यादा न हो।

इस प्रकार चिकित्सा करने से उपरोक्त सभी बिमारियां निश्चय अच्छा होता है। किन्तु इसमें समय कुछ अधिक लगता है। इसलिये धैर्य के साथ चिकित्सा-प्रारम्भ करना चाहिये। मेरे "स्वास्थ्य-प्रशिक्षण केन्द्र" में उपरोक्त रोगों से पीड़ित अनेक रोगि स्वस्थ हो चुके हैं; जिनका मेरे पास पूरा सबूत है।

(१७ – उपान्त्रदाह Appendicitis.)

छोटी और बड़ी आंत की सन्धि के पास पूंछ की शकल के जैसा छोटी सी एक चीज होती है, जिसे आन्त्र पुच्छ या अपेन्डिक्स (Appendix) कहते हैं। जब उसमें सूजन, जलन और दर्द होने लगता, तब उसे अपेन्डिसाइटिस या "उपान्त्र दाह" की बिमारी के नाम से पुकारते हैं। इस रोग मे पेट के दाहिनी तरफ बहुत दर्द होता है। रोगी दर्द से बहुत व्याकुल रहता है।

डाक्टरी चिकित्सा में इस रोग का कोई खास दवा नहीं है। केवल ऑपरेशन द्वारा इसे काट कर निकाल देना ही इस रोग का सच्चा इलाज मानते हैं। पर इससे रोगी का जो अनिष्ट होता है, वह किसी से छिपी हुई नहीं है। ऑपरेशन के समय रोगी का जीवन सङ्कटमय तो रहता ही है अगर

ऑपरेशन सफल हुआ भी, तो पीछे चलकर रोगी को एक न एक भयङ्कर व्याधियां ग्रास लेती हैं। क्योंकि डाक्टर जिस अङ्ग को काट कर निकाल देता है—उसमें तो केवल रोग का लक्षण मात्र प्रकट होता है। वह रोग का असली कारण नहीं है। रोग का असली कारण—पेट में अत्यधिक दूषित द्रव्य का सञ्चित होना है। जिनसे उसमें तनाव और गर्मी पैदा होने से होता है।

इस रोग में निम्नलिखित चिकित्सा करना चाहिये:—

(क)—प्रति-दिन सुबह और शाम गरम पानी का एनिमा लेकर पेट साफ कर लेना चाहिये।

(ख)—उसके बाद नित्य दिन हर तीन घंटे पर सहने लायक गरम पानी का कटिस्नान लेना चाहिये। फिर भिंगी तौलिया से सारे बदन को पोंछ कर दस मिनट तक पेट के उपर मिट्टी की ठंढी पट्टी लेना चाहिये।

(ग)—जब दर्द शांत हो जाय तब एनिमा के बाद सुबह में स्थानीय वाष्प स्नान लेकर तुरन्त पांच मिनट का कटि-स्नान लेना चाहिये। फिर दोपहर में दस मिनट तक पेट के उपर भिंगी मिट्टी की पट्टी और शाम में ठण्डे पानी का कटि-स्नान लेना चाहिये। दर्द के समय गरम पानी का कटि-स्नान लाभदायक होता है।

(घ)—जब तक दर्द शान्त न हो जाय, तब तक उपवास करना चाहिये और प्यास लगने पर सिर्फ गर्म पानी पीना चाहिये। दर्द शान्त होने के बाद जब तक रोगी स्वस्थ न हो जाय, तब तक केवल रसाहार या फलाहार पर रहना

चाहिये। बिल्कुल स्वस्थ होने पर अन्न खाना ठीक होता है।

इस रोग से पीड़ित—जमूई के एक सज्जन मेरे चिकित्सालय में आए। उन्हें यह बिमारी ५-६ वर्षों से था। वह कई अच्छे-अच्छे डाक्टरों से इलाज करवाया, पर उन्हें कुछ भी लाभ नहीं हुआ। अन्त में डाक्टरों ने उन्हें ऑपरेशन करवाने की सलाह दी, पर वह उससे भयभीत हो गये और निराश होकर मेरे पास आये।

मैंने उसे उपरोक्त चिकित्सा विधि करने की सलाह दी। जिससे एक सप्ताह में ही उनका दर्द चला गया और शनैः२ दो महीने में वह पूर्ण स्वस्थ हो गया।

[१८—आंत का उतरना Hernia]

कब्ज तथा पेडू के अन्दर मलों का दबाव अधिक बढ़ जाने से आंत अपनी स्थान से च्यूत होकर बाहर निकल पड़ती है। जिसे आंत का उतरना कहते हैं। आंत बाहर निकलने के छिद्र का स्थान विभिन्न तरह का होता है, फिर भी सभी का कारण पेडू के इर्द-गिर्द अधिक मात्रा में मलों का (दूषित-द्रव्यों का) इकट्ठा होना ही है। इसका भी डाक्टरी पद्धति में कोई खास दवा नहीं है। डाक्टर इस रोग में पेटी बांधने के लिये बताते हैं।

इस रोग में दोनों समय गरम पानी का एनिमा लेने तथा इसके बाद सुबह कटिस्नान और शाम में मेहन स्नान लेने से बिल्कुल ठीक हो जाता है। जब तक रोग अच्छा न हो

जाय, तब तक केवल फलाहार करना चाहिये। इस रोग से पीड़ित अनेक रोगी मेरे "स्वास्थ्य-प्रशिक्षण-केन्द्र" में आरोग्य प्राप्त कर चुके हैं। जिनका मेरे पास पूरा प्रमाण मौजूद है।

[सभी रोगों का एक ही चिकित्सा-विकार-का निकालना]

अब मेरे विचार में हरएक रोगों की व्याख्या और उसकी चिकित्सा का वर्णन करना कोई आवश्यक नहीं है। यहां कुछ रोगों के नाम ही काफी होंगे। जिनसे कि आप यह अच्छी तरह समझ जांय कि अंडकोष का बढ़ना, टान्सिलाइटिस का होना, शोथ, मधुमेह, मिर्गी, पागलपन, आदि सभी रोगों के विभिन्न रूप और लक्षणों के होने पर भी वास्तविक कारण एक ही है—शरीर के अन्दर का विकार। इसलिये इन सब की चिकित्सा का भी एक ही लक्ष्य होना चाहिये:—शरीर से विकारों को निकाल कर स्वास्थ्य एवं तन्दुरुस्ती को बनाना।

मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि—चाहे किसी प्रकार का रोग क्यों न हो—पाचन प्रणाली सबसे पहले खराब होती है। जिस हिसाब से हमारा भोजन अनियमित होता जाता है, उसी अनुपात से पाचन प्रणाली भी कमजोर और शक्ति हीन होती जाती है। ऐसी दशा में पेड़ू के इर्द-गिर्द दूषित द्रव्य के ढेर इकट्ठे होने लगते हैं। जिसका पहला परिणाम बद्धकोष्टता (कब्ज) या अतिसार के रूपों में प्रकट होता है। यह दोनों दशाएं (बद्धकोष्टता और अतिसार) आंतों में दूषित द्रव्य

के कारण जो रगड़ होती है, उससे अन्दरूनी गर्मी बढ़ जाने से उत्पन्न होती है। जब बड़ी आंतों की लसदार गिल्टियां शुष्क हो जाती है, तब मल आंतों में सूख कर सख्त हो जाता है, मल सरलता से नहीं निकल सकता—बद्धकोष्टता हो जाती है और और अतिसार उस समय होती है, जब आन्तरीय हरारत के कारण आंतों में आहार रस ग्रहण करने की शक्ति कमजोर हो जाती है। इन दोनों दशाओं में मनुष्य जो कुछ भी खाता है उसका सात्मिकरण (Assimilation) नहीं होता। अर्थात पाचन शक्ति उस आहार से उतनी जीवनी शक्ति ग्रहण नहीं कर सकती, जिनसे मनुष्य को आरोग्यता बनी रह सके; उससे लगातार दूषित द्रव्य की सामग्री इकट्ठी होने लगती है। जिसका परिणाम अन्त में भिन्न-भिन्न रोग के रूपों में प्रकट होता है।

अतः शरीर में फिर से निरोगता वापिस लाने वाली आवश्क जीवन शक्ति (Vitality) को प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि ऐसी चिकित्सा की जाय जो पाचन शक्ति को सुधारने वाले हों और साथ ही साथ ऐसी प्रत्येक बातों से लाभ उठाया जाय जो कि शरीर से दूषित द्रव्य को निकालने में हमें सहायता पहुँचाती हो। परीक्षणों के दौरान में हम देखते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा और सादा आहार इन दोनों लक्षयों की पूर्ति करता है।

ये चिकित्सा-पद्धति शरीर की भीतरी गर्मी को (जो-दूषित द्रव्य की रगड़ से उत्पन्न होती है) शांत कर देती है और सारे शरीर की जीवनी शक्ति को उभार देती है।

जिससे पाचन शक्ति सुधर जाती हैं, भोजन का सात्मिकरण होने लगता है और दूषित द्रव्य पसीना, पेशाव, पखाना तथा श्वांस-प्रश्वांस द्वारा निकल जाता है और शरीर तन्दुरुस्त हो जाता है। इस प्रकार मनुष्य मात्र के सभी रोग "प्राकृतिक चिकित्सा से आराम हो जाते हैं। जिनका प्रमाण मैं उपरोक्त प्रकरणों में दे चुका हूँ। अब मैं प्राकृतिक चिकित्सा के उन विधियों का उल्लेख करुँगा जो दूषित द्रव्य को निकाल कर शरीर को स्वस्थ एवं परिष्कृत कर देता है।



तीसरा-अध्याय

—:&:—

प्राकृतिक-चिकित्सा के साधन

अब मैं रोग निवारणार्थ प्राकृतिक-चिकित्सा के उन विधियों का—अर्थात साधारण स्नान, घर्षण स्नान, कुहने कटि स्नान, कुहने मेहन स्नान, वाष्प स्नान, स्थानीय पट्टियां, एनिमा के प्रयोग, सूर्य ताप स्नान, वायु सेवन, युक्ताहार तथा कसरत आदि का वर्णन करता हूँ। जो रोगी समाज के लिये अति लाभदायक है।

१—साधारण स्नान]

स्नान का सर्वोत्तम समय प्रातःकाल है। प्रतिदिन क्रिया-क्रम से निपटने के बाद सभी मौसम में ठंडे जल से स्नान करना चाहिये। स्नान करते समय प्रत्येक अंग को तलहथी से अच्छी तरह रगड़-रगड़ कर धोना चाहिये। इस प्रकार स्नान करने से त्वचा साफ हो जाती है। शरीर की भीतरी गर्मी (विकारमय भाप) पानी बनकर पेड़ू में चली जाती है और फिर पेशाब पखाने के रास्ते शरीर से बाहर निकल जाता है। महर्षि चरक ने लिखा है कि—

पवित्रं वृष्य मायुष्यं श्रम स्वेद मलापहम्।
शरीर बल संधान स्नान मोजस्करं परम्॥

अर्थात- स्नान पवित्र करने वाला, वृष्य, आयुवर्द्धक,

प्रस्वेद नाशक, मल दूर करने वाला, शारीरिक बल तथा ओज की वृद्धि करने वाला है।

स्नान करते समय त्वचा की स्नायुतन्तु संकुचित हो जाती है जिससे रक्त भीतरी शिराओं में चला जाता है स्नान के बाद वह (स्नायु तन्तु) फिर फैल जाती है। उसमें नया रक्त दौड़ने लगता है। स्नायु मंडल सतेज और क्रियाशील हो जाता है। त्वचा साफ और मुलायम हो जाती है। रोम छिद्र खुल जाते हैं। शरीर में ताजगी और स्फूर्ति आ जाती है।

ज्वर के अवस्था में स्नान कराना-ज्वर के अवस्था में प्रतिदिन दो-तीन बार केवल भिगी तौलिया से प्रत्येक अंग को अच्छी तरह रगड़-रगड़ कर पोछना चाहिये। इससे ज्वर का ताप कम हो जाती है और रोगी की जीवनी शक्ति उभर आती है। रोम छिद्र खुल जाते हैं जिससे पसीना के रूप में काफी विकार शरीर से निकल जाता है।

अगर भिगी तौलिया से बदन पोछने के बाद प्रतिदिन भिगी कमर पट्टी या कटि स्नान लिया जाय और काफी पानी पीया जाय तो बुखार के हर अवस्था में शिघ्र लाभ होता है।

जब ज्वर कम हो जाय और शरीर में कुछ शक्ति आ जाय, तब साधारण स्नान या घर्षण स्नान लेना चाहिये। स्नान नग्न होकर बन्द कोठली में लेना विशेष लाभदायक होगा।

[२—घर्षण स्नान]

यह स्नान भी किसी बन्द कोठरी में नंगा होकर लेना चाहिये।

स्नान के पहले सीधा खड़ा होकर हथेली से प्रत्येक अंग को शिर से पैर तक इतना रगड़िये कि त्वचा गर्म और लाल हो जाय। इसके बाद स्नान कीजिये। स्नान करते समय भी शरीर के सब अंग प्रत्यंगों को खूब रगड़ना चाहिये। फिर सूखी तौलिया से बदन रगड़ कर पोछ लेना चाहिये और हल्का कपड़ा पहन कर शरीर में गर्मी लाना चाहिये।

इस स्नान से स्नायु मंडल अधिक क्रियाशील और मजबूत हो जाती है। त्वचा साफ और मुलायम हो जाती है। दूषित द्रव्य शरीर से उभर कर निकल जाता है और रोगी आरोग्य का अनुभव करने लगता है। इसलिये यह स्नान सभी तरह के रोगों में लाभदायक है।

इसके विषय में महर्षि वाग्भट जी भी लिखे हैं कि—

दीपनं वृष्य मायुष्यं स्नानमूर्जाबलप्रदम ।
कण्डू मलश्रम स्वेद तंद्रा तृड्दाहपाप्माजित ॥

अर्थात—स्नान से जठराग्नि की वृद्धि, शरीर की पुष्टि, बल की अधिकता, आयु की दीर्घता प्राप्त होती है। दाद, खाज, थकावट, मल, पसीना, आलस्य, दाह, तृषा इत्यादि दूर होते हैं।

(३ कुहने कटि-स्नान Hip bath.)

कटि स्नान लेने के लिये टिन का बना हुआ टब कुछ लम्बाई लिये हुए गोल बर्त्तन बाजार में बिकते हैं। यह स्नान मिट्टी के नाद में भी लिया जा सकता है। टब या नाद में इतना पानी भरिये, जिसमें कमर और नाभी (पेट) का भाग पानी मे डूब जाय। पानी जितना ही ठंडा रहेगा, उतना ही इस स्नान से लाभ होगा। कमजोर रोगी को शुरू में ऐसे पानी से स्नान लेना चाहिये, जिसकी ठंढक थोड़ा गर्म पानी मिलाने से मर जाय अर्थात पानी न गर्म और न ठंडा रहना चाहिये। टब या नाद में पैर बाहर रखकर बैठना चाहिये। इस अवस्था में पेड़ू और जांघों का भाग पानी में रहेगा और शेष भाग पानी से बाहर रहेगा। यह स्नान भी प्रकाश युक्त कोठली में नंगा होकर लेना चाहिये।

कटि स्नान लेते समय एक साफ खुरदरा तौलिया से पेड़ू तथा जांघ के दोनों बगल को धीरे-धीरे रगड़ना चाहिये। यह स्नान जाड़ा में दो मिनट से दश मिनट तक और गर्मी मे ५ मिनट से ३० मिनट तक लिया जा सकता है अथवा जब तक रोगी को आराम देह मालूम हो तब तक यह स्नान लेना चाहिये। इसके बाद तौलिया से पानी पोछ कर बदन में गर्मी लाने के लिये कमर, पेड़ू और जंघों को हथेली से रगड़ना चाहिये या कोई मोटा कपड़ा पेड़ू और कमर के चौतरफ लपेट लेना चाहिये। इसके बाद कमजोर रोगी को हल्का चादर ओढ़ कर लेट रहना चाहिये और सबल रोगी को टहलना चाहिये।

कटि स्नान लेते समय पेड़ू, कमर और जांघों के भाग पानी मे डूबा रहता है। अतः इन स्थानों में ठंड का विशेष प्रभाव होता है, जिससे इन स्थानों के स्नायु केन्द्र और पाचन प्रणाली सकुचित हो जाती है, खून सरक कर ऊपर चला जाता है। विकारमय गर्मी शांत हो जाती है।

कटि स्नान के बाद शरीर में तुरन्त प्रतिक्रिया होती है। स्नायु केन्द्र सजीव और क्रियाशील हो जाता है। पाचन प्रणाली में सुधार होने लगता है। यह यकृत क्लोम, अंतड़ियों का रस स्राव (Secretion) को बढ़ा देता है; जिससे भोजन का सात्मिकरण होने लगता है। शरीर के सभी हिस्सों में जीवनी शक्ति (Vitality) पहुँचती है, रोग के विष पखाना, पेशाब तथा श्वास-प्रश्वास द्वारा निकल जाता है। मलावरोध का शिकायत दूर हो जाता है।

इस प्रकार खांसी, दम्मा, थायसीस (T. B.) गठिया लकवा, कैन्सर, स्नायविक दुर्बलता (Neurasthenia) अनिद्रा पागलपन, मिर्गी, गर्मी, कोढ़, सुजाक, तथा प्रदर, प्रसूत, बन्ध्यापन आदि स्त्री पुरुषों में होने वाले समस्त रोगों में यह स्नान नियमित भोजन और विभिन्न स्नानों के साथ निश्चित लाभ पहुंचाता है।

उपान्त्रदाह (Appendicitis), आंतों का सूजन (Colitis), पाकस्थली का घाव (Gastriculcer), नितम्ब सम्बन्धी स्नायविक पीड़ा (Sciatica), गर्भाशय का सूजन (Ovartis), हृदय रोग, निमोनियां, फुसफुस प्रदाह आदि में पहले गरम पानी का ही कटि स्नान दीजिये। जब रोगी का

तकलीफ कम हो जाय और स्वास्थ्य सुधरने लगे तब ठंढे पानी का कटि स्नान देना लाभदायक होगा ।

वीर्य सम्बन्धी दोष, नपुंसकता (Impotency), मुत्राशेय के दर्द (Renal colic), मूत्र रोग विकार(Uraemia), उपदंश, सुजाक, मुत्राशय की सुजन (Nephritis), स्तम्भन शक्ति (Retentive power) के अभाव में हल्का उष्ण पानी का ही कटि स्नान लेना चाहिये । नियमित भोजन और कटि स्नान से उपरोक्त सभी बिमारियां निश्चय अच्छा होता है ।

सभी प्रकार के बुखार में ठंडे पानी का कटि स्नान से शर्तिया लाभ होता है । ऐसे रोगी को जिसका पैर ठंडा रहता हो कटि स्नान देते समय दोनों पैर गर्म पानी में डुबाये रखना चाहिये ।

[४—कूहने मेहन स्नान Sitz bath.]

यह स्नान किसी भी गोल वर्त्तन जिसमें २०—२५ सेर पानी अंट सके, लिया जा सकता है । पहले टब में पानी भर कर उसमें एक छोटी तिपाई दे देना चाहिये जो जल में टकरा-ता रहे । रोगी दोनों पैर बाहर रखकर तिपाई पर बैठ जाय । इस अवस्था में नितम्ब और इन्द्रिय का भाग पानी में रहेगा और शेष भाग (कमर और जंघा आदि) पानी के बाहर रहेगा । यह स्नान हमेशा प्रकाश युक्त कोठरी में लेना चाहिये ।

स्नान लेते समय साफ खुरदरा तौलिया से इन्द्रिय

(पेशाब की इन्द्रिय-लिङ्ग) के ऊपरी शिरे, जांघों के दोनों बगल, अंडकोष और गुदा के बीच का भाग को रगड़-रगड़ कर धोना चाहिये।

औरत को यह स्नान लेते समय तौलिया में जितना पानी आ सके इन्द्रिय (योनी) के दोनों बगल ऊपर-नीचे लगातार धीरे-धीरे धोना चाहिये। मासिक धर्म के समय ३-४ दिनों तक स्नान नहीं लेना चाहिये। इसके बाद किसी खराबी के कारण मासिक धर्म जारी रहने पर भी स्नान शुरू कर देना चाहिये।

शरीर के खास-खास नाड़ियों का शिरा जितनी इन स्थानों में पायी जाती है उतनी और किसी अंगों मे नहीं पायी जाती है। इसलिये मेहन स्नान का असर सारे शरीर की स्नायु संस्थानों पर पड़ता है। जिससे आन्तिरिक विकार नष्ट हो जाती है। नाड़ी संस्थान सशक्त और क्रियाशील हो जाती है। शरीर की जीवनी शक्ति उभर आती है।

इससे जनेन्द्रिय सम्बन्धी रोग तथा स्नायविक विकार-अनिद्रा, शिर की बेचैनी स्नायु शूल, सायटिका, उन्माद (Mania), मिर्गी (Epilepsy), हिस्टीरिया आदि में निश्चित रूप से लाभ करता है। स्त्री सम्बन्धी रोग में जैसे—प्रदर, मासिक की खराबी, बन्ध्यापन, प्रसूत आदि में रामबाण के जैसा फायदा करता है।

यह स्नान नाड़ी संस्थानों के विकारों को दूर कर हरएक रोगों को अच्छा करने में समर्थ होता है।

[५—वाष्प स्नान Steam bath.]

यह स्नान बेंत की बुनी हुई कुर्सी अथवा छिद्र वाली खाट पर लिया जा सकता है। रोगी को कुर्सी पर बैठाकर अथवा खाट पर लेटा कर कम्बल से अच्छी तरह ढक देना चाहिये। कुर्सी अथवा खाट को भी इस तरह घेर देना चाहिये जिससे रोगी को भाप तो लगे, पर उसके अन्दर का भाप बाहर न निकल सके। इसके बाद खौलता हुआ पानी का वर्त्तन कुर्सी या खाट के नीचे दीजिये। कुछ देर के बाद पहला वर्त्तन का भाप कम हो जाने पर दूसरा खौलता हुआ पानी का वर्त्तन दीजिये। इस प्रकार भाप देने से सम्पूर्ण शरीर मे भाप लगेगा और पसीना निकलने लगेगा। रोगी के इच्छानुसार १० से ३० मिनट तक पसीना निकलने देना चाहिये। इसके बाद उष्ण जल से स्नानकर सूखी तौलिया से वदन पोछ लेना चाहिये। फिर ठंडे जल का कटि स्नान लेना चाहिये। शरीर जितना अधिक गर्म होगा, ठंढ उतनी ही कम लगेगी, पसीना आने पर उत्तेजना नहीं होती है। इसलिये वाष्प स्नान के बाद ठंढे जल के स्नान से डरने का कोई कारण नहीं है।

वाष्प-स्नान से शरीर में संचित दूपित द्रव्य पिघल जाता है और उसका अधिकांश भाग पसीना के रूप में बाहर निकल जाता है। शेप पिघला हुआ पदार्थ कटि स्नान लेने से पेड़ू के तरफ आकर्पित होता है और वह पेशाब पखाना के साथ बाहर निकल जाता है। इस प्रकार शरीर दूषित द्रव्य

के भार से मुक्त हो जाता है ।

इससे सभी प्रकार के रोग—हैजा (Cholera), शूल (Colic), दस्त, पित्ताशय की पथली (Gall stones), अग्निमांध, बवासीर, दम्मा, गठिया, पेशी वात (Musculer-rheumatism), कटि वात (Lumbago), पाण्डु आदि रोगों मे स्थानीय और सर्वाङ्गीन वाष्प स्नान तथा सादा आहार और विभिन्न स्नानों के साथ शर्तिया फायदा पहुँचाता है ।

शरीर के किसी अंगों में दर्द हो वाष्प स्नान के बाद कटि स्नान लेने से तुरन्त शान्ति मिलती है । कटि स्नान लेने के पहले प्रत्येक अंगों को भिगी तौलिया से पोछ लेना चाहिये ।

बुखार के अवस्था में जबकि ज्वर का ताप १००°-१०२ डिग्री से ज्यादा न हो, वाष्प स्नान से शिघ्र लाभ होता है । तीव्र ज्वर में यह स्नान नहीं लेना चाहिये । चेचक के प्रारम्भिक अवस्था मे वाष्प स्नान देने से रोग के विष (गोटी) आसानी से उभर आते हैं ।

सभी तरह के चर्म रोगों मे खाज, खुजली, दाद, दिनाय, एक्जिमा, सुनबहरी, सफेद कोढ़ आदि में गिली मिट्टी का लेप विविध स्नान और सादा आहार के साथ सप्ताह में दो चार वाष्प स्नान लेने से शिघ्र फायदा होता है ।

बिच्छू, सर्प, या किसी जहरीले जानवरों के काटने पर स्थानीय वाष्प स्नान देने और गीली मिट्टी की पट्टी बांधने से तुरन्त रोगी को शान्ति मिलती है ।

स्नायविक रोग— ब्लडप्रेसर, शिर की बेचैनी, अनिद्रा

हृदय रोग, तीव्र ज्वर, बहुत कमजोरी की अवस्था में, क्षय (T. B.) रोग में वाष्प स्नान नहीं देना चाहिये ।

किसी भी रोग में यह स्नान सप्ताह में दो बार से अधिक नहीं देना चाहिये । जिस रोग में इसका खास विधान बताया गया हो उसी में इस स्नान का विशेष प्रयोग करना चाहिये ।

[६—पैरों का गरम स्नान **Hot foot bath.**]

किसी ऐसे वर्त्तन में जिसमें रोगी का पैर घुटनों तक आसानी से समा जाय, गरम पानी भर दें । पानी इतना गर्म हो, जिसे रोगी बर्दाश्त कर सकें ।

रोगी को तिपाई या कुर्सी पर बिठा कर दोनों पैर गर्म पानी के वर्त्तन में डुबो दें । फिर गर्दन को छोड़ कर रोगी के सारे शरीर को इस तरह कम्बल से ढक दें जिससे गर्दन के नीचे का सारा अंग और पानी का वर्त्तन भी अच्छी तरह ढक जाय । इसके बाद शिर के उपर एक भिगी तौलिया लपेट दें ।

यह स्नान भी वाष्प स्नान की तरह लाभकारी है । इससे खास कर स्नायविक रोग, जैसे—स्नायुओं की पीड़ा (Neuralgia) हिस्ट्रीया, पागलपन (Insanity इन्सेनीटी) पक्षाघात (Paralysis पैरेलिसिस) रक्त चाप आदि में शिघ्र लाभ होता है ।

इस स्नान से शरीर के सब हिस्सों में रक्त संचार बराबर हो जाता है। नाड़ी संस्थान क्रिया शील और मजबूत हो जाती है। इसलिये किसी भी रोग की बेहोशी और नाड़ी खिंच जाने की अवस्था में इससे तुरन्त फायदा होता है।

इससे विकारमय गर्मी शिर से पैर की ओर खिंचा जाता है। इसलिये भयंकर शिर दर्द, शिर की बेचैनी, अनिद्रा, हृदय रोग (Heart disease) आदि में बहुत शिघ्र लाभ होता है।

(७—सारे शरीर की गीली पट्टी)

किसी चौकी या खाट पर सूखा हुआ दो कम्बल बिछा कर उसके उपर एक भिंगा हुआ चादर बिछा दें। चादर का पानी खूब अच्छी तरह निचोड़ा हुआ हो। इसके बाद रोगी को बिल्कुल नंगा कर उसके उपर चित लेटा दें और चादर तथा कम्बल को एक-एक करके दोनों ओर से उसके शरीर पर लपेट दें। शिर बाहर निकला रहे, पर शरीर का सारा हिस्सा उन कपड़ों से ढका रहे। ऐसा करने से रोगी को कभी ठंडक नहीं लगेगा। पहले हो सकता है रोगी को ठंड मालूम हो, लेकिन थोड़ी देर के बाद ही रोगी को आराम मालूम होने लगता है। ५-७ मिनट के बाद ही शरीर के ताप से पट्टी गरम हो जाती है और २०-३५ मिनट के बाद रोगी के शरीर से पसीना निकलने लगता है। रोम कूप खुल जाते हैं और उसके जरिये पसीने के रूप में बहुत सा दूषित द्रव्य बाहर

निकल जाता है। और शरीर रोग मुक्त हो जाता है। पट्टी के बाद भिगी तौलिया से बदन पोछकर या धोकर सूखे कपड़े पहन लेना चाहिये।

इससे सभी तरह के रोग अच्छे हो जाते हैं। नये रोगों में दो चार पट्टी से लाभ हो जाता है। लेकिन पुराने रोगों में इसका प्रयोग बहुत बार होता है। फिर भी महीने में दश बार से ज्यादा इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

सभी प्रकार के बुखार—टायफायड (Typhoid), निमोनियां, मलेरिया, इन्फ्लूएञ्जा (कफ ज्वर), ब्रौंकाइटिस (Bronchitis), आदि में यह लपेट बहुत ही लाभ दायक है।

चेचक (Small pox), में इस लपेट से रोगी की विपत्ति आसानी से दूर हो जाती है। पहली ही बार के प्रयोग से रोग के विष (गोटी या दाने) विना तकलीफ के निकल जाते हैं और चार पांच वार के इस लपेट से दाने या गोटी मुरझा जाते हैं। नियमित आहार विविध स्नान और इस लपेट से थोड़े ही दिनों में असाध्य चेचक के रोगी भी आराम हो जाते है।

खांसी, दम्मा, टी० बी०, पीलिया, चर्म रोग, अपस्मार, उन्माद, प्रमेह, स्वप्न दोष, प्रसूत ज्वर, आदि मे इस लपेट से बहुत फायदा होता है।

[८—स्थानीय पट्टियां]

जब कमर, छाती, गला, रीढ़, पैर, हाथ आदि

शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों पर गीली पट्टी का प्रयोग किया जाता है तब स्थान भेद के अनुसार इसे भिगी कमर पट्टी (The wet girdle), छाती की पट्टी (Chest pack), गले की पट्टी (Throat pack), रीढ़ की पट्टी, पैर की पट्टी आदि कहते हैं। इन स्थानीय गीली पट्टियों से अधिकांश रोगों में जादू का सा असर होता है।

पट्टी के वास्ते ८-१० इन्च चौड़ा और ५-७ हाथ लम्बा कपड़ा को ठंडे पानी में भिगो कर निचोड़ लेना चाहिये फिर शरीर के जिस अंग में पट्टी का प्रयोग करना हो, उसके चारों तरफ लपेट कर ऊपर से सूखा गर्म या कोई मोटा कपड़ा लपेट देना चाहिये। जिस अंग में पट्टी लपेटी नहीं जा सकती हो, उन अंगों में भिगी पट्टी रख कर ऊपर से गर्म कपड़ा रख देना चाहिये।

शरीर के किसी भी अंग में दर्द हो, सूजन या प्रदाह हो, कोई अंग कट गया हो अथवा विषैले जानवरों ने डंस लिया हो, उन पीड़ित स्थानों में भिगी पट्टी रखने या लपेट देने से यथाशीघ्र लाभ होता है।

सभी प्रकार के बुखार में अन्य स्नानों के साथ भिगी कमर पट्टी से बहुत फायदा होता है। अगर बुखार के शुरू में प्रतिदिन भिगी तौलिया से बदन पोंछ दिया जाय और २-३ घंटे का अन्तर देकर भिगी कमर पट्टी का प्रयोग किया जाय तो दो तीन दिनों में ही बिना किसी उपद्रव के बुखार अच्छा हो जाता है।

अजीर्ण और कोष्ठबद्धता की अवस्था में नियमित कसरत और सादा आहार के साथ-साथ रात्रि में सोते वक्त भिंगी कमर पट्टी लेने से थोड़े ही दिनों में रोग के मूल कारण नष्ट हो जाते हैं और पाचन प्रणाली स्वस्थ हो जाता है ।

शिर की बेचैनी अनिद्रा में भिंगी कमर पट्टी से विकार-मय गर्मी शिर से नीचे उतर आता है और रोगी को तुरन्त शान्ति मिलती है ।

पेट के विभिन्न रोगों में स्थानीय वाष्प स्नान और भिंगी कमर पट्टी से आरोग्य लाभ होता है ।

इसी प्रकार खांसी, दम्मा, क्षय (T.B.), ब्रौंकाइटिस आदि में सादा भोजन और विविध स्नानों के साथ छाती की भिंगी पट्टी (Chest pack) से इच्छित फल मिलता है ।

नाड़ी संस्थानों को विकार रहित और क्रियाशील बनाने के लिये रीढ़ की गीली पट्टी सर्वोत्तम है । अनियमित भोजन तथा रहन-सहन के कारण स्नायु संस्थानों में बहुत सी खराबियां पैदा हो जाती हैं और फलस्वरुप गर्दन तोड़ बुखार (Cerebro spinal meningitis) धनुष्टङ्कार (Tetanus), नाड़ी क्षोभ (Nenrits), आदि अनेक रोग पैदा हो जाती है । इन सभी बिमारियों में कटि स्नान, वाष्प स्नान, सारे शरीर की गीली पट्टी, एनिमा का प्रयोग आदि के साथ रीढ़ की गीली पट्टी लेने से रोगी को शिघ्र लाभ होता है ।

रीढ़ की गीली पट्टी लेने के लिये एक साफ धोती या

चादर तीन-चार तह किया हुआ पानी में भिगो कर निचोड़ लीजिये और उसे चौकी पर फैलाकर उसपर इस प्रकार चित्त लेट जाइये, जिसमें गर्दन और रीढ़ का सारा हिस्सा गीली पट्टी पर पड़े। इसके बाद छाती और पेड़ू के ऊपर भी दूसरा भिगा हुआ कपड़ा रख लीजिये। चेहरा खुला हुआ रहे। पट्टी के बाद भिगी तौलिया से बदन पोछ लेना चाहिये।

(६—मिट्टी के प्रयोग)

जो लाभ स्थानीय भिगी कपड़े की पट्टी से होता है, वही लाभ मिट्टी के प्रयोग से होता है।

साफ मिट्टी को ठन्डे पानी में भिगों कर पेट पर पोल्टिस बांधने से दस्त साफ होता है। शिर में किसी कारण से दर्द होने पर शिर के उपर भिगी मिट्टी की पट्टी बांधने से दर्द आराम हो जाता है।

सभी तरह के चर्म रोग—खाज, खुजली, दाद-दिनाय सुनबहरी, सफेद कोढ़, आदि सादा आहार, वाष्प स्नान, एनिमा, तथा भिगी मिट्टी के लेप से रोग के कारण मिट जाते हैं। त्वचा चिकना और मुलायम हो जाता है।

बिच्छू, बर्रे आदि के डंक मारने पर आहत अंगों में मिट्टी के प्रयोग से आराम होता है।

जहरीले सांपों के काटने पर पहले आहत अंगों को चीर कर काफी खून निकाल देना चाहिये फिर वाष्प स्नान

देकर आहत अंगों तथा सारे शरीर में भिगी मिट्टी का मोटी पोल्टिश बांधना चाहिये। इससे एक-दो घटे में विष का प्रभाव मिट जाता है और रोगी भला चंगा हो जाता है।

हर तरह के बुखार में पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी बांधने से रोगी को बहुत शांति मिलती है और नियम पूर्वक कुछ रोज प्रयोग करने पर सभी तरह के ज्वर दूर हो जाता है।

मिट्टी साफ, रेशम की तरह चिकनी और जिसे भिगोने पर सुगन्ध आती हो सुन्दर होता है। जिस मिट्टी में खाद्य मिली हो, रेतीली हो, जहां मल मूत्र त्यागा जाता हो—वह अच्छी नहीं होती है। इसके विपरीत आवादी से दूर जहां मल मूत्र, खाद्य आदि न डाला जाता हो उस जगह का एक हाथ नीचे का मिट्टी खोदकर ले आना चाहिये। उसे धूप मे सुखा कर तथा बारीक पीसकर किसी अच्छा पात्र में रख लेना चाहिये और जरूरत पड़ने पर प्रयोग में लाना चाहिये।

(१०—एनिमा का प्रयोग)

अयोग्य खान-पान के कारण जब आंतें शिथिल और कमजोर हो जाती है, तब मल (पखाना) नियमित समय पर नहीं होता है अथवा खुलासा नहीं होता है। मल के बाहर निकलने में ज्यादा देर को या पूरा-पूरा न निकलने को कब्ज या बद्धकोष्टता कहते हैं। आंतों में अधिक देर तक मल के रुके रहने से उसमें सड़न उत्पन्न हो जाती है, जो अनेक रोगों का कारण होता है। केवल इतना ही नहीं, ऐसा कोई भी रोग

नहीं, जिसकी तीव्रता को यह बढ़ा न देती हो। इसलिये चाहे कोई भी रोग क्यों न हो, पहले आंतों की सफाई कर लेना परम आवश्यक है।

आंतों की सफाई के लिये कई साधन हैं, उनमें तुरन्त आंतों को धोकर दूषित मल को बाहर निकाल देने के लिये एनिमा यन्त्र सर्वश्रेष्ट है।

एनिमा यन्त्र कई तरह का होता है, उनमें एक केनली के नीचे रबर की नली लगी रहती है और उसके अग्र भाग में नौजल फीट किया रहता है, अच्छा होता है।

एनिमा यन्त्र में सहने लायक हल्का गर्म पानी भरकर किसी कील के सहारे दिवाल पर लटका दीजिये। एनिमा में पानी देते समय रबर की नली में हवा भर जाता है, इसलिये उसके अग्र भाग को खोल कर थोड़ा पानी गिरा देना चाहिये। जिससे हवा निकल जाय। इसके बाद चौकी या बेञ्च पर चित लेट जाइये। शिरहाने का भाग कुछ नीचा और पैर का भाग कुछ ऊँचा रखिये। पैर को थोड़ा मोड़ लीजिये। इस अवस्था में एनिमा के अग्र भाग को पखाने के रास्ते में एक-डेढ़ ईञ्च अन्दर देकर उसे खोल दीजिये। जिसमें पानी आंतों में चढ़ने लगे। पानी चढ़ते समय पेट की मालिश भी करते जाइये और पर्याप्त मात्रा में पानी चढ़ने दीजिये। जिससे मल मार्ग फैल जाय, आंतों के भीतर केंचुए के रेंगने की सी संकोच और प्रसार की क्रिया उत्पन्न हो। इसमें अंतरियां हिलने डुलने लगती है। इस गति का प्रभाव दोनों आंतों पर पड़ता है और दूपित मल पानी में घुलकर बिना

तकलीफ के बाहर निकल जाता है। आंतें बिल्कुल साफ हो जाती हैं और शरीर में नया जहर नहीं जमता।

आंतों में पानी चढ़ाने से उसमें खून का प्रवाह होता है, जिससे आंतों में ताजगी आती है और उसमें काम करने की शक्ति बढ़ती है। उचित आहार-विहार पर रहकर कुछ दिनों तक एनिमा लिया जाय तो फिर कब्ज नहीं होता है। बहुतेरी बिमारियां अनेक तरह के ईलाज कराने पर भी जब अच्छा नहीं होता है तब विविध स्नान और सादा आहार के साथ एनिमा के प्रयोग से इच्छित फल मिलता है।

एनिमा में पानी का मात्रा पात्र के अनुसार, जैसे:— छोटे बच्चे को एक छटाक से लेकर पाव भर तक, चार वर्ष से ज्यादा उम्र के बच्चे को आधा सेर से तीन पाव तक, दश से अठारह वर्ष के बच्चों को एक सेर से डेढ सेर तक पानी चढ़ाया जा सकता है और उससे ज्यादा उम्र वालों को अढ़ाई तीन सेर तक पानी चढ़ाना चाहिये।

तेज बुखार में कमजोरी की अवस्था में और यक्ष्मा रोग में एनिमा का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

[११—सूर्य-ताप स्नान]

"सूर्यो हि भूवानामायुः" अर्थात् सूर्य ही चराचर भूतों का जीवनाधार है। संसार में जितने भी मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-लता आदि हैं, उन सबों में सूर्य प्रकाश से ही जीवनी शक्ति बनी रहती है। अगर ऐसा नहीं होता तो, जब आसमान

में सप्ताहों बादल छाया रहता है, उस समय क्यों मनुष्य और पशु-पक्षियों में निस्तेजता और आलस्य का साम्राज्य आ घेरता है ? सूर्य से वंचित वनस्पतियां पेड़ पौधे क्यों सफेद और पीले पड़ जाते हैं ? उन बड़े-बड़े शहरों मे जहां गरीबों के घर में सूर्य की रोशनी नहीं पहुँच पाती है, क्यों अधिकतर रोग के शिकार होते हैं ? स्पष्ट है कि सूर्य से मिलने वाली जीवनी शक्ति उसे नहीं मिल पाती है । किसी कवि का कहना ठीक ही है कि—"जिस घर मे सूर्य नहीं पहुँचता, वहाँ वैद्य पहुचते हैं" ।

यदि सूर्य न होता तो हमलोग एक दिन भी जीवित नहीं रह सकते । यह सारी गन्दगी को दूर कर हमारे जीने लायक वातावरण तैयार करता है । सूर्य की रोशनी में रोगोत्पादक शक्ति नष्ट हो जाती है जो और किसी पदार्थ में ऐसी क्षमता नही है । सूर्य के विना न गर्मी ही मिल सकती है और न प्रकाश ही । प्रकाश का सही रूप मे उपयोग नहीं करने पर अनेक तरह का रोग उत्पन्न हो जाता है । अगर हम सूर्य्य के प्रकाश में नित्य प्रति थोड़ी देर नंगे बदन टहलना और मालिश करना नियम बना लें तो अधिकांश रोगों के आक्रमण से बचे रह सकते है । वेदों में सूर्य-स्नान के विषय में लिखा है कि—

मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोपि धायि ते ।
सूर्यस्त्वाधिपति मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभि ॥

(अथर्ववेद, पञ्चम काण्डम् स० ३०-१५)

अर्थात्-हे जीव ! (ते प्राणः) तेरा ...(मा उप-

दसत्) विनाश को प्राप्त न हो। और (ते अपानः) तेरा अपान भी (मा अपिधायि) कभी न रुके। अर्थात तेरे शरीर में श्वास-प्रश्वास की क्रिया कभी बन्द न हो। (अधि पतिः) सबका मालिक (सूर्यः) सूर्य, सबका प्रेरक परमात्मा (त्वा) तुझको (रश्मिभिः) अपनी व्यापक बलकारणी किरणों से (उद्-आ-च्छतु) ऊंचा उठाये रखे। तेरे शरीर को और जीवन शक्ति को गिरने न दे।

अतः स्वस्थ अवस्था में जितनी सूर्य प्रकाश की आवश्यकता है, उससे भी अधिक उसकी उपयोगिता रुग्नावस्था में है। सूर्य-ताप स्नान से रोम छिद्र खुल जाते हैं। दूषित द्रव्य पसीने के रूप में बाहर निकल जाता है। सूर्य किरणों का प्रभाव शरीर के प्रत्येक अवयवों पर पड़ता है, जिससे जीवन शक्ति (Power of life) बढ़ जाती है। रोग के विष नष्ट हो जाते हैं और सारे शरीर में नव जीवन का अविर्भाव होने लगता है।

नियमित भोजन और विविध स्नानों के साथ-साथ प्रातः काल का सूर्य-प्रकाश स्नान लेने से सभी पकार के रोग— ज्वर, मलेरिया, टायफायड, खांसी, दम्मा, यक्ष्मा (Phthisis) वात व्याधि (Rheumatism), पक्षाघात (Paralysis), मिर्गी, हिस्टीरिया, प्रसूत ज्वर, बच्चे का सूखा रोग (Ricket), प्रसूति के बाद औरतों का कमर व पैरों की हड्डियां नरम पड़ जाने पर (Astomalcia) आस्टोमलेसिया आदि में आशातीत लाभ होता है। अन्यान्य रोगों में भी सूर्य प्रकाश से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

सूर्य-तार-स्नान के समय यथा सम्भव नंगा शरीर रहना चाहिये; तभी उससे यथोचित लाभ होगा। स्नान सहन शक्ति के अनुसार ही लेना चाहिये। इसके बाद भिगो तौलिया से बदन पोंछकर विश्राम करना चाहिये।

[१२—वायु सेवन]

स्वास्थ्य तथा जीवन के लिये सबसे अधिक उपयोगी पदार्थ शुद्ध वायु है। भोजन और जल के बिना हम कुछ दिनों तक जीवित रह सकते हैं। परन्तु वायु के बिना एक क्षण भी जीवित रहना मुश्किल है।

शुद्ध वायु जिसे हम श्वास द्वारा ग्रहण करते हैं, उसके १०० भागों में प्रायः—आक्सिजन के २० भाग
नाइट्रोजन के ८० भाग

पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त वायु में पानी का अंश कार्बन डाय-आक्साइड, धूल के कण, ओज़ोन आदि अन्य गैसें भी कुछ अंश में मिली होती है।

आक्सिजन वायु—जिन स्थानों में कल कारखाना न हो, घनी आबादी न हो; जहां गन्दगी का जमाव न हो वायु के साथ धूल-धूआँ न उड़ता हो ऐसे स्थानों में आक्सिजन वायु (Oxygen) पर्याप्त मात्रा में मिलती है। यह प्राणी मात्र के लिये अत्यन्त आवश्यक और महत्वशाली तत्व है। इसके बिना न कोई जीवित रह सकता है और न अग्नि ही प्रज्वलित हो सकती है। आखिर जलना इस जगत में है क्या? केवल किसी पदार्थ का आक्सिजन से मेल। जब भी कोई

वस्तु जलती है तो उसका इस गैस से संयोग होता है। आक्सिजन के संयोग से ही शरीर का ताप यथावत रहता है और जीवन नष्ट नहीं होता। जिस तरह वायु किसी पदार्थ के जलने के लिये आवश्यक है, उसी तरह हमारे जीवन के लिये भी है।

नाइट्रोजन वायु—यद्यपि आक्सिजन वायु शरीर के लिये अत्यन्त आवश्यक है, फिर भी हम उसे शुद्ध रूप में ग्रहण नहीं कर सकते हैं। आक्सिजन वायु उग्र दाहक होने के कारण उससे शरीर को हानि पहुँचती है। इसलिये वायु में नाइट्रोजन (Nitrogen) आक्सिजन को कमजोर बनाने के लिये है। यदि नाइट्रोजन-आक्सिजन में मिश्रित न हो तो पदार्थ शिघ्र जल जाय और जीवन क्रिया भी जल्द समाप्त हो जाय। नाइट्रोजन से कोई वस्तु नहीं जल सकती और न वह स्वयं ही जलती है।

कार्बन-डाय-अक्साइड—जब कोई वस्तु जलायी जाती है तो वायु में से आक्सिजन खर्च हो जाती है और वहां नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है। ऐसे स्थानों पर आक्सिजन की कमी होने से श्वास लेने पर दम घुटने लगता है। इसी प्रकार जब कोई वस्तु सड़ती है तो उससे दूषित गैस (Carbondioxide) उत्पन्न होती है। और उस स्थान की वायु को दूषित या गन्दी कर देती है। कल-कारखानों की धुआं, गन्दी नालियां, जहां-तहां मल मूत्र का त्यागना, जानवरों के मल-मूत्र, कूड़ों के ढेर, कुओं के पास का कीचड़,

प्राणियों द्वारा छोड़ी हुई अपान वायु आदि से कार्बन-डाय-आक्साईड की उत्पत्ति होती है और हमारे आस-पास की वायु को दूषित कर देती है। बन्द कोठरियों, तहखानों, सीलदार कमरों आदि की वायु भी गन्दी होती है। इन स्थानों में आक्सिजन वायु की मात्रा न रहने से या कम होने से स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है और अनेक तरह का रोग उत्पन्न हो जाता है।

यद्यपि दूषित वायु अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न होती है, फिर भी इसकी मात्रा वायु-मंडल में एक समान नहीं रहती है। क्योंकि गैसों में विसर्जन गुण है। वृक्षों की हरियाली दूषित वायु को ग्रहण कर आक्सिजन वायु को प्रदान करती रहती है। इसलिये जो लोग आबादी से दूर हट कर बगीचों या खेतों में, नदी किनारे अथवा पहाड़ी स्थानों में रहते हैं—जहां प्रकाश युक्त वायु प्रचुर मात्रा में मिलती रहती है, वे अधिक तन्दुरुस्त होते हैं। क्योंकि उनको शुद्ध वायु (Oxygen) हमेशा मिलती रहती है।

श्वास और प्रश्वास का काम हमारे शरीर में शुद्ध वायु (Oxygen) को पहुँचाना और दूषित वायु (Carbon-dioxide) को बाहर निकालना है। शरीर के प्रत्येक अवयवों को आक्सिजन वायु की आवश्यकता होती है और उसकी पूर्ति रक्त द्वारा होता है।

हमारे शरीर में दो प्रकार की रक्त स्रोत हैं। जो समस्त शरीर में जाल की तरह फैली हुई है। एक तो वह जो हृदय से समस्त शरीर में जाती है और दूसरी वे हैं—जो समस्त

शरीर से होती हुई हृदय में आती है। पहली धमनी (Artery) और दूसरी को शिरा (Veins) कहते हैं। हमारी धमनियां सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती हुई केशिकाएं (Capillaries) समस्त शरीर में फैली हुई है और फिर वह (सूक्ष्म केशिकाएं) बड़ी होती हुई शिरा के रूप में परिणत हो गई है।

जब शुद्ध वायु श्वास द्वारा फेफड़े में पहुँचती है तो वहां से रक्त के लालकण (Red-Corpuscles) इसे अपने में घुलाकर हृदय में लौट आती और फिर वहां से धमनियों तथा केशिकाओं (Capillaries) द्वारा आक्सिजन वायु को शरीर के प्रत्येक अवयवों तक पहुँचा देती है और फिर उनसे उत्पन्न विषों (Carbonic acid gas) को लेकर शिराओं द्वारा हृदय में होता हुआ फेफड़े में जाता है। वहां वह दूषित वायु को छोड़ देती हैं जो फेफड़ों से निश्वास द्वारा बाहर निकल जाता है। और श्वास द्वारा गृहित आक्सिजन वायु को लेकर हृदय में लौट आता है, यहां से इसका फिर नया फेरा शुरू हो जाता है। यह क्रम प्रतिक्षण स्वस्थ शरीर में होता रहता है।

इस प्रकार आक्सिजन वायु शरीर के सभी अवयवों में पहुँचकर उनको पोषण प्रदान करती हैं, उनके विकारों को जलाती और साफ करती है। इसीसे पाचन क्रिया होती है, नया रक्त बनता है तथा सम्पूर्ण शरीर में नवजीवन का संचार होता रहता है। वायु ही हमारी जीवन-शक्ति का मूल आधार है। इसलिये यह आवश्यक है कि हम हमेशा खुली वायु में ही श्वास लें और गन्दी वायु से बचें।

हमारे जीवन के लिये स्वस्थ अवस्था में जितनी खुली वायु की आवश्यकता है, उससे कहीं अधिक उसकी आवश्यकता रुग्णावस्था में है। बीमार होते ही भूख का मन्द हो जाना, जीभ में मैल बैठना, गदला पेशाब का होना, दुर्गन्ध-युक्त प्रश्वास का निकलना आदि इस बात को प्रमाणित करते हैं कि शरीर के प्रत्येक अवयव उन विकारों (रोग के विष) को निकालने के लिये प्रयत्नशील हैं। अतः बुद्धिमानी इसी में है कि रुग्णावस्था में हम सदैव खुली और प्रकाश युक्त स्थानों में रहें, तथा साथ ही अन्य प्राकृतिक साधनों को भी प्रयोग में लायें, जिससे शरीर रोग के विष को दूर कर नूतन स्वास्थ्य को प्राप्त कर सके।

(१३—आहार)

प्रकाश और वायु के बाद आहार ही जीवन और स्वास्थ्य-रक्षा का प्रधान साधन है। शरीर में शक्ति, स्फूर्ति और उष्णता का उत्पादक आहार ही होता है। आयुर्वेद में भी लिखा है कि—

आहार की आवश्यकता

आहारः प्राणिनः सद्यो बल कृद्देह धारकः।
आयुस्तेजः समुत्साह स्मृत्योजोऽग्नि विद्धिनः सुभुन ॥

अर्थात्—आहार शरीर का पोषण करने वाला, शीघ्र बल देने वाला, तृप्तिकारक, आयुष्य तेज वर्द्धक, साहस, मानसिक शक्ति और पाचन शक्ति को बढ़ाने वाला है।

आहार से ही शरीर में रस, रक्त, मांस, मज्जा, अस्थि

मेद और शुक्रादि धातुएं बनती हैं। इन्हीं धातुओं से शरीर के प्रत्येक अवयवों का पोषण और नव निर्माण होता रहता है, तथा आरोग्य और आयुर्बल का विकास होता है। महर्षि चरक ने भी लिखा है कि—"देहोह्याहार संभवः" शरीर आहार से ही बनती हैं। अर्थात आहार के बिना शरीर का काम नहीं चल सकता। यदि कोई मनुष्य कुछ न खाकर उपवास करे तो कुछ ही दिनों में शरीर कमजोर पड़ जायगा और जीवन क्रिया समाप्त हो जायगी। वैसे ही गलत आहार से शरीर में विकारों का ढेर इकट्ठा होने लगता है और कुछ ही काल में शरीर रोग ग्रसित हो जाता हैं। इतना हीं नहीं—गलत या अप्राकृतिक खान-पान के कारण मनुष्य की आयु भी क्षीण हो जाती हैं। मनु भगवान का यह वचनयर्थात् सत्य है कि—

"आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति"

अर्थात आलस्य और अन्नदोष से मनुष्य शीघ्र मर जाता है। अतएव हमारे लिये यह विचारणीय विषय है कि हम क्या खायं? जिससे हमारी आयु बल, बुद्धि, रूप कान्ति और मेधा की वृद्धि हो तथा शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य ठीक अवस्था नें रहे।

उपनिषद में "आहार" शब्द की परिभाषा इस प्रकार की गई है—

"अद्यतेऽति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यत"

अर्थात् सभी जीवों का जो कुछ भी आहार है, वह सब अन्न ही है।

"अन्न" शब्द संस्कृत के 'अद्र भक्षणे' धातु से बना है। जिसका अर्थ होता है—जो कुछ खाया जाय, वह सब अन्न ही है। इस कथन के अनुसार अगर हम आहार द्रव्य पर विचार करें तो—चावल, रोटी, दाल, दूध, फल, कन्दमूल, शाक-सब्जी आदि के अलावे तरह-तरह के पकवान मिठाइयां, मांस, मछली, अंडा, मिर्च-मसाला, चाय, बिस्कुट, कोको, काफी तथा पान, बीड़ी-सिगरेट, तम्बाकू, शराब आदि जितनी वस्तुओं को हम मुँह के राह से ग्रहण करते हैं, वे सब "अन्न" ही हैं।

आहार द्रव्य

उपरोक्त प्रकार का आहार द्रव्य अधिकांश मनुष्य किसी न किसी रूप में ग्रहण करते हैं। जो लोग गरीब हैं, वे आर्थिक परिस्थिति के कारण बराबर मांसादि न भी खाते हों, लेकिन जब उन्हें मिल जाता है तो बड़े चाव से खाते हैं। मसाला तो रोज की सुलभ वस्तु है। इसे सभी (अमीर व गरीब) हमारे यहां व्यवहार में लाते हैं। चाय, बीड़ी-सिगरेट ताड़ी, शराब आदि का प्रचलन भी काफी है। अधिकांश लोग इसे पीते खाते हैं। इससे ज्ञात होता है कि प्रत्येक पदार्थ जिसे मनुष्य आहार रूप में ग्रहण करता है, उससे वह जीवित रह सकता है।

अब प्रश्न यह है कि क्या उससे जीवन शक्ति (Vitality) की वृद्धि होती है? क्या उससे आरोग्य और आयुर्बल का विकाश होता है? अगर होता है, तो फिर हम कब्ज, अपच तथा अन्य कोई न कोई व्याधियों से पीड़ित क्यों दिखाई देते हैं? हमारे छोटे-छोटे बच्चे जीर्ण और पीले-पीले क्यों नजर आते हैं? युवक और युवतियां क्लांत और मुरझायी हुई क्यों

दिखती हैं ? क्या ये साबित नहीं करता है कि आज समग्र मानव समाज रुग्न है ? कोई भी रोग बिना कारण के नहीं होता है और न उनके होने का कोई ईश्वरीय विधान है। उसका एकमात्र कारण प्रकृति के विरूद्ध आहार ग्रहण करना है। क्या उन अमेरिकन वैज्ञानिकों का कहना सही नहीं है कि—

"Man never dies he kills himself."

अर्थात–मनुष्य कभी नहीं मरता, वह स्वयं अपने आप को मार देता है। जैसा मनुष्य भोजन करता है वैसा ही उनका स्वास्थ्य होता है। मनुष्य की सच्ची भलाई और उन्नति उनके खान पान में प्राकृतिक नियमों पर निर्भर हैं। हम स्वाद के लिये जितना खाते हैं उतना ही हमारा स्वास्थ्य खराब होता है और जीवन शक्ति नष्ट होती है। अतः हमें खूब विचार करना चाहिये कि हम क्या खांय और क्या न खांय।

मनुष्य की शारीरिक रचना, उसके दांतों की बनावट और आहार चर्वण करने की विधि पर विचार करने से ज्ञात पड़ता है कि ईश्वर ने इसे मांसादि नहीं बल्कि फल, दूध, शाक, सब्जी ही खाने के योग्य प्राणी बनाया हैं। अन्य पशु जगत में मनुष्य अंगों की बनावट वनमानुष और बन्दरों से मिलता है। इनका आहार फल, शाक-सब्जी ही है। इनके दांत और पाचन प्रणाली मनुष्य के पाचन अंगों के जैसा ही है। किन्तु गीदड़, कुत्ता, बाघ आदि मांसाहारी जीवों के दांत और पाचन अंगों से मनुष्य की पाचन प्रणाली और दांत बिल्कुल भिन्न हैं। गाय, घोड़ा, हिरण आदि जानवरों के पाचन अंगों से भी मनुष्य अंगों की बनावट नहीं मिलती हैं। इससे

जान पड़ता है कि मनुष्य न मांसाहारी ही है और न घास-पात ही खाने योग्य प्राणी है। इसका असली आहार अन्न, फल, दूध, शाक-सब्जी ही है।

मनुष्य की स्वभाविक प्रवृत्ति और विचार से भी मालूम होता है, कि वह निरामिष और सात्विक भोजी प्राणी है। मांस, मछली, अंडा तथा उत्तेजक पदार्थों से स्वभावतः अरुचि पैदा होती है। छोटे-छोटे बालक और बालिकाएं इन सब चीजों को खाना पसन्द नहीं करती हैं। अनेक मांसाहारी व्यक्ति भी कहते हैं, कि अंडा, मांस; मछली आदि का असली (प्राकृतिक) रूप आंख, नाक और जिह्वा को अच्छा नहीं लगता है, उनसे स्वभावतः घृणा पैदा होती है। उसे उबालकर तथा नमक, मिर्च-मसाला मिलाने के बाद ही खाने की रुचि पैदा होती है।

अनुभवों और परीक्षणों से भी सिद्ध हो चुका है कि मनुष्य का मुख्य आहार—दूध, फल, अन्न, शाक, सब्जी ही है। फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान पियर गेसेण्डी ने लिखा है कि—मैं जहां तक मनुष्य जीवन का अध्ययन, चिन्तन और अनुभव किया हूँ, उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि मनुष्य का आहार—दूध, फल, अन्न, कन्द-मूलादि हैं। जो लोग मांस, मछली, अंडा तथा उत्तेजक पदार्थ मिर्च-मसाला आदि आहार के साथ लेते हैं, वे भ्रम में हैं और अपने स्वास्थ्य तथा जीवन दोनों का नाश करते हैं।

मांस, मछली, अंडा में पोषक तत्व अधिक होता है फिर भी वह हमारे पाचन अंगों के अनुकूल न होने से

वह आंतों में ही सड़ जाता है और उसका विषैला गैस रस रक्तादि को दूषित कर देता है। परिणाम स्वरूप अपच, भूख की कमी, लीवर दोष, पेट में वायु पैदा होना, कब्ज, बदबूदार टट्टी, धातु क्षीणता, आलस्य, शिर-दर्द, वात-गठिया आदि रोग पैदा हो जाती है। जिसका असर बहुत धीरे-धीरे होता है। और एक के बाद दूसर लक्षण प्रकट होता है। अतः ये सब (मांसादि) त्यागने योग्य वस्तु है।

आहार द्रव्य में मिर्च-मसाला भी छोड़ने लायक वस्तु है। यह विशेषकर स्वाद के लिये खायी जाती है। वस्तुतः इसमें कोई स्वाद नहीं हैं। किन्तु बचपन से ही आदत पड़ी होने के कारण इसका गंध और स्वाद हम पसन्द करते हैं। अफ्रिका, अमेरिका तथा योरोप के अधिकांश भागों में इसका प्रचलन नहीं हैं। फिर भी वहां के मनुष्य अपना आहार बड़े रुचि के साथ खाते हैं और स्वस्थ तथा तन्दुरुस्त बने रहते हैं। अगर उन लोगों को हम अपनी मसाला मिली हुई आहार खिलायें तो, उन्हें वह बहुत बेस्वाद मालूम होगी अगर कुछ दिनों तक किसी कारण वश खाना पड़े तो उस अवस्था में उनकी पाचन प्रणाली खराब हो जाती हैं। पश्चात्य विद्वानों ने इसका अनेक बार प्रयोग करके देखा हैं। डाक्टर बोमेंट ने इस विषय में लिखा है कि—"आहार द्रव्यों के साथ मिर्च मसालों का व्यवहार से पाचन अङ्गो में अनावश्यक गर्मी और उत्तेजना पैदा हो जाती हैं जिससे पाचन शक्ति कुछ बढ़ती सी जान पड़ती हैं। किन्तु इसका बराबर प्रयोग से शनैः-शनैः पाचन प्रणाली कमजोर हो जाती हैं। परिणाम स्वरूप भविष्य में उससे अनेक तरह के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

हमारे छोटे-छोटे बच्चे भी जिनका नैसर्गिक स्वाद नष्ट नहीं हुआ है, वे मिर्च मसाला खाना पसन्द नहीं करते हैं। इससे भी ज्ञात होता है कि मसाला हमारा प्राकृतिक आहार नहीं है। केवल आदत वश हम उसे खाते हैं।

चाय, काफी, कोको का व्यसन भी हमारे पाचन अंगों पर कुप्रभाव डालता है। इससे पाचन क्रिया मन्द पड़ जाती है। भोजन का सात्मिकरण ठीक से नहीं होता है, बद्धकोष्टता हो जाती है। इसके अधिक व्यसन से स्नायविक दुर्बलता, दांतों की खराबी, तथा धातुक्षीणता आदि रोग उत्पन्न हो जाता है। इसके सिवा गांजा, भांग, अफीम, ताड़ी, शराब, बीड़ी, सिगरेट आदि भी स्वास्थ्य नाशक हैं। इन सबों के सेवन से स्नायु तन्तु अधिक विकृत और निकम्मा हो जाता है। रस रक्तादि दूषित हो जाते हैं। जिससे भविष्य में अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं। अतएव इन सभी चीजों को छोड़ देना चाहिये।

सभी प्रकार के पक्वान—पूरी, कचौरी, तरह-तरह की मिठाइयां, आचार, चटनी आदि भी हमारे शारीरिक अवयवों के योग्य नहीं होता है। इस प्रकार के भोजन से रक्त में अम्लता (Acidity) की मात्रा बढ़ जाती है, जो हमारे स्वास्थ्य के लिये अनिष्टकर सिद्ध होती है।

हमारे रक्त में ८० प्रतिशत क्षारा पन (Alkalinity) और २० प्रतिशत अम्ल (Acidity) की मात्रा है। रक्त में इन दोनों की मात्रा ठीक रहने पर ही शरीर निरोग और तन्दु-

स्त रहता है ।

जैसा कि मैं ऊपर बता चुका हूँ कि सभी तरह के पकवान, मिठाइयां, मुरब्बा, चीनी, पूरी, कचौरी, चोकर रहित आटा, छिलके रहित दाल, पालिश किया

अम्ल कारक पदार्थ

हुआ चावल, आचार, चटनी, मिर्च-मसाला, मांसादि, चाय, काफी, कोको, तथा बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, ताड़ी, शराब आदि पदार्थ हमारे शारीरिक अवयवों के अनुकूल नहीं होता है । ये सभी पदार्थ अम्ल कारक, गुरू पाकी तथा उत्तेजक होते हैं । इन सबों का अनवरत प्रयोग से पाचन क्रिया मन्द हो जाती है उस अवस्था में जो कुछ खाया जाता है वह ठीक से नहीं पचता और भूख मर जाती है । मन्दाग्नि के कारण खाये हुए पदार्थों का जो रस-रक्तादि बनता है, वह कड़वा और खट्टे रस वाला होता है । जिसका नतीजा यह होता है कि हम प्रतिदिन कब्ज, भूख की कमी, आलस्य, नींद न आना, जुकाम आदि एक या अनेक रोगों से पीड़ित रहते हैं ।

अतएव हमारे भोजन में क्षार तत्व की अधिकता होनी चाहिये, जिससे शरीर हमेशा तन्दुरुस्त बना रहे अगर किसी भी तरह का

क्षार प्रधान पदार्थ

रोग हो गया हो तो, वह अच्छा हो जाय ।

इस श्रेणी में ताजा और कच्चा दूध सर्वोत्तम आहार है । यह शीघ्र पच जाता है और रोगी-निरोगी सभी के लिये

लाभदायक है। दूध से बने पदार्थ—दही, मठा, मक्खन, घी भी क्षारीय प्रधान खुराक है। दही में एक प्रकार का अम्ल (Lactic acid लैक्टिक एसिड) है जो पाचन क्रिया में सहायता करती है और पच जाने पर क्षारीय प्रधान द्रव्य बन जाती है। मठा में भी दही के सभी गुण मौजूद रहते हैं। ये दोनों पदार्थ (दही और मठा) भी सभी के लिये लाभदायक है। दस्त, संग्रहणी, तथा कमजोर मेदा वालों के लिये दही या मठा उत्तम आहार है। यह ताजा ही लेना चाहिये। मक्खन और घी कुछ गुरुपाकी होता है। यह स्वस्थ मेदा वालों के लिये अधिक लाभदायक है।

सभी तरह के फल—बादाम, अखरोट, कांजू, किशमिश, छोहारा, सेव, नासपाती, बेदाना; आम, केला, खरबूजा, पपीता, खीरा, ककरी, फूट, तरबूज, गाजर, टमाटर आदि क्षार प्रधान खुराक है। यह भी सर्वोत्तम आहार है। मैं कई दम्मा और गठिया के रोगी को केवल फलाहार पर ही चंगा किया हूं। यह कमजोर आंत वालों के लिये भी बढ़िया खुराक है। यह शिघ्र पच जाता है और रस-रक्तादि भी शारीरिक अवयवों के अनुकूल बनता है।

नीबू, नारंगी और संतरा में खटाई पन होने पर भी क्षारमय पदार्थ है। यह खून को साफ करता है और विकारों (रोग के विषों) को निकालता है। इसे हमेशा पानी के साथ व्यवहार करना चाहिये।

सभी तरह के शाक-सब्जी जैसे—पालक, पोय,

नेनुआं, परवल, तरोई, लौकी, बन्धा कोबी, शलजम, मूली आदि में भी क्षारीय पदार्थ अधिक होता है। इन सबों को छिलके सहित साधारण रीति से उबाल कर खाना चाहिये, जिनमें नमक के सिवा और कुछ न मिलाया जाय। दस्त और बुखार के अवस्था में शाक-सब्जी नहीं खाना चाहिये।

सभी तरह के अन्न, चावल, गेहूँ, जौ, मकई, मटर, चना आदि की भूसी और चोकर के तहों में अधिक क्षारीय पदार्थ पाये जाते हैं। कण और मांड़ सहित चावल, चोकर सहित आटा साधारण विधि से पकाकर, फल और सब्जियों के साथ खांय तो हमारा स्वास्थ्य कभी खराब न हो। हम सदा तन्दुरुस्त और तगड़े बने रहें।

अब हम इस विषय को समझाने के लिये आधुनिक मत के अनुसार विचार करेंगे कि—आहार द्रव्य में कौन-कौन से तत्व पाये जाते हैं और शरीर की आवश्यक पूर्ति के लिये किसकी क्या आवश्यकता है।

आहार अवयव

साधारणतः जो पदार्थ आहार रूप में ग्रहण किये जाते हैं, उसे संक्षिप्त रूप से तीन भागों में बांटे जा सकते हैं।

पहला—शरीरावयव-निर्माण कारक पदार्थ—जो धातुओं, तन्तुओं और अवयवों का निर्माण करता है तथा उसे मजबूत बनाये रखता हैं।

दूसरा—शक्ति, स्फूर्ति और उष्णता उत्पादक पदार्थ—जो शरीर

में आवश्यक गर्मी बनाये रखता है और जिनसे शारीरिक और मानसिक परिश्रम करने की शक्ति (क्षमता) प्राप्त होती है।

तीसरा—वे पदार्थ—जो आहार द्रव्य को शरीरावयव के योग्य बनाने में कारणीभूत होते हैं तथा उनके विकारों को पेशाब व पसीने के रूप में बाहर निकालते हैं।

प्रथम श्रेणी के आहार द्रव्य में तीन चीजें सम्मिलित हैं—(क) मांस जातीय पदार्थ (प्रोटिन Proteen), (ख) खनिज जातीय पदार्थ (मिनेरल्स Minerals). (ग) खाद्य पदार्थ का पुष्टिकर उपादान (Vitamines विटेमिन्स)।

(क) मांस जातीय पदार्थ (Proteen)-यह शारीरिक धातुओं, तन्तुओं और अवयवों का निर्माण करता है और उन्हें पुष्ट रखता है। इसके अन्तरगत १०० भागों में कार्बन ४८ भाग, हायड्रोजन १० भाग, अक्सिजन २४ भाग, नायट्रोजन १५ भाग और फास्फोरस का २ भाग रहता है।

प्रोटीन—जीवों से और वनस्पतियों से हमें प्राप्त होता है। जीवों से दूध, अंडा, मांस और मछली में मिलता है। वनस्पतियों में गेहूँ और दाल जातीय अन्नों में मिलता है। इसकी थोड़ी बहुत मात्रा बादाम, काजू, अखरोट, मूंगफली आदि में भी पायी जाती है।

जीव द्वारा जो प्रोटिन हमें प्राप्त होता है उनमें अंडा, मांस और मछली हमारी प्रकृति और पाचन प्रणाली के उपयुक्त नहीं होता है। इसकी प्रोटीन गाढ़ा होता है और

पाचन अंगों के विपरीत पड़ता है। अतः इसे छोड़ देना चाहिये।

दूध में सर्वोत्तम प्रकार का प्रोटीन मिलता है। दूध न केवल छोटे बच्चों के लिये लाभदायक है बल्कि छोटे, बड़े, जवान, बूढ़े, स्त्री, पुरूष सबके लिये लाभदायक है। इसमें प्रोटीन के अलावे जीवनोपयोगी सभी आवश्यक तत्व है जैसे—पोटीन (Proteen), कार्बोहायड्रेट (Carbohydrate) आयरन (Iron) खनिज (Minerals) फास्फोरस (Phosphorus) विटेमिन्स (Vitamines) आदि सब परिमित मात्रा में पाये जाते हैं जो शरीर के लिये सभी आवश्यक पदार्थ हैं। साथ ही दूध में जितने भी तत्व पाये जाते हैं वे सभी उत्ताम कोटि के होते हैं और शीघ्र पच जाते हैं। इन सब कारणों से दूध सभी खुराकों से श्रेष्ट है केवल दुग्धाहार द्वारा मनुष्य सदा स्वस्थ रह सकता है। लेकिन याद रहे दुग्ध के उपरोक्त सभी गुण ताजा और कच्चा अवस्था ही में रहते हैं। उबाल देने पर उसका बहुत से तत्व नष्ट हो जाते हैं।

हिन्दुस्तान में प्रायः गाय भैंस और बकरी इन तीन जानवरों का दूध खाया जाता है। जिनमें गाय का दूध सर्वोत्ताम है क्योंकि इसके दूध में थोड़ी बहुत सभी आवश्यक तत्व पाये जाते हैं।

दूध के बाद गेहूँ और दाल की किस्म की चीजें—चना मसूर, उड़द मटर आदि में उत्तम कोटि का प्रोटीन मिल जाता है। इसे प्राकृतिक अवस्था में फूलाकर अथवा

छिलका सहित साधारण विधि से पका कर खाने से शीघ्र पच जाता है और शारीरिक अवयवों को पुष्ट रखता है।

इसके सिवा सूखे फलों में-बादाम, कांजू, अखरोट, पिस्ता, मूंगफली आदि में भी हमें उत्तम कोटि का प्रोटिन मिल जाता है।

(ख) खनिज जातीय पदार्थ (Minerals)—इस से शरीर निर्माण में सहायता मिलती है। यह दिमाग, स्नायु-मंडल, फेफड़े और पाचन अंगों के कार्य को ठीक रखता है। साथ ही रस-रक्तादि धातुओं का वृद्धि और पोषण करता है हड्डियों को मजबूत बनाता है। खनिज द्रव्य के अन्तर्गत कई तत्व पाये जाते हैं, इनमें आक्सिजन, हायड्रोजन, नायट्रोजन, कार्बन, फास्फोरस, कैल्सियम, क्लोरिन, सोडियम, आयरोन आदि मुख्य हैं। इनमें आक्सिजन को छोड़कर बाकी यौगिक रूप में पाये जाते हैं।

यह दूध और दूध से बने पदार्थ—मक्खन, दही, मठा आदि, सभी तरह के सूखे और मौसमी फल—अखरोट, कांजू, छोहारा, खुबानी, चिलगोजा, नींबू, संतरा, बेदाना, सेब, नासपाती, अमरूद, पपीता, ककड़ी, खीरा, तरबूज, तथा सभी तरह के हरी पत्ती वाला शाक-पालक, नेनुआं, तरोई, परवल आदि में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

(ग) खाद्य पदार्थ का पुष्टि कर उपादान (Vitamines)

यह खनिज जातीय पदार्थ की तरह आहार द्रव्य में बहुमूल्य क्रिय अंश है जो शारीरिक अवयवों को पुष्ट रखता है

और उनके विकारों को नष्ट करता है। साथ ही आहार द्रव्य को सात्मिकरण के योग्य बनाता है।

आज तक की खोजों से विटेमिन्स की कुल छः जातियां का पता लगा है वह इस प्रकार है—ए० बी० सी० डी० ई० और जी०। किन पदार्थों में कौन-कौन से विटेमिन्स पाये जाते हैं और उससे शरीर को क्या लाभ है; उनका विवेचन मैं नीचे देता हूँ।

विटेमिन्स--"ए"

यह कच्चा दूध, मक्खन, छाछ, अंकुरित, गेहूँ, और चना हरी पत्ती वाली शाक-पालक, बंधा कोबी, गाजर, शल-जम और टमाटर में पायी जाती है। इन सब चीजों को अधिक उबालने या पकाने से यह विटेमिन्स नष्ट हो जाता है। इसलिये इसे कच्चा अथवा हल्का उबालकर खाना चाहिये।

यह स्नायु मंडल फेफड़े आंखें और पाचन अंगों को मजबूत बनाता है तथा शरीर के वाढ़ में सहायता करता है। इसकी कमी से शरीर कमजोर हो जाता है। पाचन शक्ति मन्द हो जाती है। साथ ही शरीर में अनेक खराबियां पैदा हो जाती है।

विटेमिन्स—"बी"

यह विटेमिन्स चोकर सहित गेहू, कण सहित चावल

छिलके सहित दाल आदि में अधिक पाया जाता है। अन्न के अलावे कच्चा-ताजा दूध, मक्खन, पिस्ता, बादाम, अखरोट, नारियल, गाजर आदि में पाया जाता है।

यह स्नायु संस्थानों को शक्ति प्रदान करता है खून की लाली को बनाता है। दिल और दिमाग को पुष्ट रखता है।

इसकी कमी से बेरी-बेरी का रोग हाथ पैर का सुन्न जाना हृदय रोग मानसिक विकार आदि पैदा हो जाता है।

विटेमिन्स—"सी"

यह सभी तरह के नीबू संतरा मौसम्मी तथा आलू बोखारा, सेव, टमाटर, गाजर, मूली सभी तरह की हरी पत्तों वाली शाक, कच्चा-ताजा दूध और अंकुरित अन्न में पायी जाती है।

इससे शरीर में रस-रक्तादि की वृद्धि होती है। दांतों का पोषण होता है और त्वचा कोमल तथा सुन्दर बना रहता है।

इसकी कमी से मुंह में बदबू आना, पायरिया, रक्त विकार, तथा चर्म रोग पैदा होता है।

विटेमिन्स—"डी"

यह कच्चा दूध, पालक शाक और टमाटर में पाया जाता है। धूप में नंगे बदन तेल मालिश करने पर शरीर में

विटेमिन्स—"डी" उत्पन्न होता है ।

विटेमिन्स—"ई"

यह सभी तरह के अंकुरित अन्न, कच्चा ताजा दूध, मौसमी फल और हरी पत्ती वाली शाकों में पायी जाती है ।

इसकी कमी से बांझपन और नपुंसकता का रोग उत्पन्न हो जाता है । यह संतान उत्पन्न करने वाली अंगों को मजबूत करता है और संतान उत्पन्न होने पर मां के स्तनों में दूध पैदा करती है ।

विटेमिन्स—"जी"

यह दूध, चोकर गेहूं का आटा, कण सहित चावल, पालक शाक, और टमाटर में मिलता है । इसकी कमी से दस्त, संग्रहणी, खून की कमी, पाण्डू आदि रोग हो जाता है ।

खाद्य पदार्थों के विषय में इतना याद रखना चाहिये कि पालिश किए हुए चावल, गेहूं का मैदा, औटाया हुआ दूध, मसाला से बघारा हुआ और भूना हुआ शाक सब्जियां वनस्पति घी, अधिक देर का पका हुआ भोजन, खट्टा, चरपड़ा मिर्चे मसाला आदि में खनिज लवण (क्षारीय पदार्थ) और विटेमिन्स आदि आवश्यक तत्व नहीं होता है । ऐसा आहार ग्रहण करने से शरीर में अनेक तरह की खराबियां पैदा हो जाती है । अतः इन सब चीजों को त्याग देना चाहिये ।

२—दूसरी श्रेणी के आहार द्रव्य में दो चीजें सम्मिलित है—(अ) शर्करा जातीय पदार्थ (Carbohydrate) (ब) स्नेह जातीय पदार्थ (Fat)।

(अ) शर्करा जातीय पदार्थ (Carbohydrate)—यह पदार्थ कार्बन, हायड्रोजन और आक्सिजन के मेल से बनता है। कार्बोहायड्रेट के १०० भागों में से हायड्रोजन का ६.५ भाग और आक्सिजन का ३४ भाग है। शरीर में इनका संयोग होने से यह पदार्थ पानीय (जल) रूप में परिणत हो जाता है और उष्णता तथा शक्ति उत्पन्न करता है। इन्हीं पदार्थों से शारीरिक और मानसिक परिश्रम करने की क्षमता (Energy) बनी रहती है।

यह सभी तरह के अन्नों में, जैसे—गेहूं, चावल, जौ, मकैइ, बाजरा आदि में—लसदार आटे के रूप में मिलता है। तथा सभी तरह के फल-किशमिश, छोहारा, अखरोट, काजू, सेव, नाशपाती, केला, आम, अमरूद, पपीता आदि तथा दूध में उत्तम कोटि का कार्बोहायड्रेट मिलता है।

कार्बोहायड्रेट मनुष्य का प्रधान आहार है। क्योंकि शक्ति और उष्णता का उत्पादक कार्बोहायड्रेट ही होता है। यदि हमारे आहार में प्रोटिन का एक भाग हो तो कार्बोहायड्रेट का भाग उससे चार गुणा अधिक होना चाहिये। इससे शरीर का निर्माण कार्य और शक्ति संचय दोनो ठीक अवस्था में होते हैं।

(ब) स्नेहन जातीय पदार्थ (Fat)—इसमें भी कार्बन,

हायड्रोजन और अक्सिजन का संयोग रहता है। इसकी ठीक मात्र ग्रहण करने से जलकण बन जाते हैं और शरीर में उष्णता तथा शक्ति पैदा करते हैं इसकी अधिक मात्रा ग्रहण करने से शरीर में चर्बी के रूप में संचित होता रहता है। इसलिये भोज्य पदार्थ के साथ इसकी मात्रा बहुत कम होना चाहिये।

स्नेहन पदार्थ (Fat) हमें कई तरह से मिलता है। (१) जानवरों से-दूध, घी, मक्खन और चर्बी द्वारा (२) वनस्पतियों से-जैतून का तेल, नारियल गरी या उसका तेल, मूंगफली, सरसों का तेल, वनस्पति घी द्वारा (३) फलों से-अखरोट, बादाम, पिस्ता आदि द्वारा।

सबसे उत्तम स्नेहन पदार्थ दूध और दूध से बने पदार्थ—दही, मक्खन और घी की होती है। दूसरा नम्बर में फलों से प्राप्त स्नेहन पदार्थ अच्छा होता है। तीसरा में सभी तरह के वनस्पति तेलों का नम्बर है। चर्बी का तेल हमारे पाचन अङ्गों के उपयुक्त नहीं होता है। इससे पाचन क्रिया खराब हो जाती है। और चन्द तरह का रोग उत्पन्न हो जाता है।

हरएक मनुष्य को दूध या दूध से बने पदार्थ—दही, घी, मक्खन आदि से ही स्नेहन प्राप्त करना चाहिये। फलों से प्राप्त स्नेहन भी अधिक लाभदायक और सुपाच्य होता है। वनस्पति तेल और घी खाने से शरीर में अनावश्यक गर्मी और उत्तेजना पैदा होती है। इसलिये इसे छोड़ देना चाहिये।

३—तीसरी श्रेणी के आहार द्रव्य में जल अंश की

प्रधानता है।

शारीरिक और मानसिक अवयवों के संगठन में "जल" का महत्वपूर्ण स्थान है। हमारे शरीर में १०० भागों में से ७५ प्रतिशत अंश "जल" का होता है। मान लें किसी मनुष्य का वजन एक मन है तो उसमें से ३० सेर जल का अंश होगा और १० सेर अस्थि, मांसादि पदार्थों का होगा। भिन्न-भिन्न धातुओं, तन्तुओं और अवयवों में जलीय अंश रहने से उनके गति और रसायनिक क्रिया में सहायता मिलती है। हमारी सभी आहार में थोड़ा बहुत जल का अंश रहता है। यह खाये हुए आहार द्रव्य को पचा कर सात्मीकरण (Assimilation) के योग्य बना देता है। आहार रस (रक्त) जल के ही संयोग से शारीरिक अवयवों और तन्तुओं में प्रवाहित होते हैं। इसके बिना जीवनी द्रव्य (रक्त) न तो गठित हो सकते हैं और न तो शारीरिक अवयवों में फैलकर अपना कार्य ही सम्पादन कर सकते हैं।

जल का दूसरा काम है—शरीर के विभिन्न अवयवों से विकार द्रव्य को बाहर निकालना। यह रक्त के साथ मिलकर अवयवों तन्तुओं और धातुओं में फैल जाता है और उनसे उत्पन्न विषों को साथ लेकर पसीने व पेशाब के रूप में बाहर निकल जाता है। जलका यह क्रिया हर वक्त होती रहती है। इस क्षति पूर्ति के लिये ही हमको बार-बार प्यास लगती है और जल पीना पड़ता है। जो जल हमारे जीवन के लिये इतना आवश्यक है, उसकी सफाई और स्वच्छता पर हम बहुत कम ध्यान देते हैं।

उत्तम आहार—उपर के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आरोग्य और आयुर्वर्धन के लिये वही आहार उत्तम हो सकता हैं, जिसमें शारीरिक पोषण और संवर्द्धन के लिये आवश्यक तत्व ,जैसे—प्रोटिन, खनिज, विटेमिन्स, कार्बोहाय-ड्रेट, फैट, और जल परिमित मात्रा में मिले। एक ही जातीय के पदार्थ हमेशा खाते रहने से शरीर में दूपित द्रव्य के ढेर इकट्ठे होने लगते हैं और इसके परिणाम स्वरुप शरीर में अनेक तरह के रोगों की सृष्टि होने लगती है। इसलिये उपर जो आहार द्रव्य का वर्गीकरण कर के बताये हैं, उनमें तीनों से थोड़ी मात्रा नित्यप्रति के भोजन में लेना चाहिये।

यदि हम शरीरावयव-निर्माण कारक पदार्थ (प्रोटिन, खनीज और विटेमिन्स जातीय पदार्थ) ही केवल खांय, तो उससे शरीर पुष्ट तो होगा, परन्तु उससे शारीरिक उष्णता, शक्ति (काम करने की शक्ति) और स्फूर्ति की कमी रहेगी। शरीर में उष्णता तथा शक्ति उत्पादन के लिये शर्करा और स्नेहन जातीय पदार्थ की आवश्यकता रहती है। वैसे ही उष्णता तथा शक्ति उत्पादक पदार्थ ही केवल खाये जांय, तो नित्य-प्रति कार्य करने से शारीरिक तन्तुओं का जो छीजन होती है, उसकी पूर्ति न होगी तथा शरीर कमजोर और निकम्मा हो जायगा। अगर हम उपरोक्त दोनों प्रकार के भोज्य पदार्थ खांय, किन्तु उचित परिमाण में जल न पीयें तो, आहार तत्व (रक्त) शारीरिक अवयवों और तन्तुओं में न तो प्रवाहित ही हो सकेगा और न वह अपना कार्य ही सम्पादन कर सकेगा। शरीर में दूषित द्रव्य का संग्रह होना शुरु हो जायगा। अतः

शरीर की आवश्यक पूर्ति के लिये उपरोक्त बताये हुए तीनों प्रकार के भोजनों की आवश्यकता है। साथ ही जिसका रूप, गंध और स्वाद उसके प्राकृतिक अवस्था में हमें अच्छा लगे ; जो शीघ्र पच जाय। उसको पचाने में पाचन अङ्गों की शक्ति का अपव्यय न करना पड़े। महाभारत में भी लिखा है कि—

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्राम्यं ग्रस्तं परिणमेच्चयत् ।
हितं च परिणामे यत्तदाद्यं भूतिमिच्छता ॥
(महाभारत, उद्योग पर्व)

जो पदार्थ ग्रहण करने के योग्य हो (याने जो स्वाभानुकूल हों,) पाचन क्रिया के उपयुक्त हों तथा परिणाम में लाभदायक हों (अर्थात जिसमें शरीर के योग्य सभी आवश्यक तत्व मौजूद हों) ऐसे पदार्थों का आहार आरोग्यता के इच्छुकों को करना चाहिये।

मिश्र आहार—तन्दुरुस्ती की हालत में प्रति-दिन केवल दो बार (सुबह और शाम) भोजन करना चाहिये। अगर नाश्ता करना ही पड़े तो—नारंगी जाति की एक या दो नीबू और थोड़ा गाय का ताजा दूध खाइये, अथवा केवल दूध या कोई भी मौसमी फल नाश्ता में ले सकते हैं।

दोपहर के भोजन में—हाथ से पीसा हुआ चोकर सहित मोटे आटे की एक या दो मोटी रोटियां अथवा कण सहित चावल का थोड़ा भात, जिसका मांड़ न निकाला जाय, समूची या भूसी सहित तैयार किया हुआ एक-डेढ़ छटांक तक दाल, उबाली हुई हरी पत्ती वाली शाक, थोड़ा मक्खन या घी ए:

सकते हैं। साथ में अपने रुचि के अनुसार मौसमी फल या पालक, पात-कोभी, गाजर, टमाटर, खीरा, ककड़ी आदि का एक प्याला सलाद भी लीजिये। लेकिन याद रहे उपरोक्त सभी भोजन मिलाकर भूख से ज्यादा न हो।

शाम के भोजन में—रोटी और सूखा फल—अखरोट, काजू, किशमिश, छोहाड़ा, पिस्ता आदि जो मिल सके, खाइये, ऊपर से एक गिलास दूध या दूध से बने पदार्थ—दही या मठा भी लीजिये। अथवा कोई भी मौसमी फल—केला, अमरूद, पपीता, सेब, नासपाती आदि जो मिल सके. रोटी और दूध खाइये। अथवा रोटी, उबाली हुई सब्जी या सब्जियों का सलाद और दूध खाइये।

आहार ग्रहण करते समय पानी नहीं पीना चाहिये। भोजन के साथ जल पीने से आहार द्रव्य में पाचक रस ठीक से नहीं मिल पाता है, जिससे मन्दाग्नि हो जाती है, भोजन का उचित रूप में सात्मिकरण न होने से कब्ज या अनिमित दस्त का होना, पेट में वायु का सड़ना, भूख की कमी आदि एक या अनेक रोग धीरे-धीरे हो जाता है।

पहला भोजन करने के एक घंटा बाद और दूसरी बार के भोजन से एक या दो घंटे पहले तक पानी कई बार और काफी मात्रा में पीजिये। जिससे आहार पचकर सात्मिकरण के योग्य हो जाय और दूषित द्रव्य पेशाब, पखाना, पसीना आदि के रूप में बाहर निकल जाय तथा तन्दुरुस्ती ठीक अवस्था में बनी रहे।

ऊपर जो भोजन क्रम बताया गया है, उसपर कुछ लोग का आक्षेप हो सकता है कि इस प्रकार का आहार रोगियों के लिये पथ्य हो सकता है। तन्दुरुस्ती की अवस्था में ऐसे भोजनों की कोई आवश्यकता नहीं है: मैं उन्हें फिर स्मरण दिलाता हूं कि आज तक मानव समाज में जितने भी प्रकार के रोग देखे और पाये जाते हैं वे सब अप्राकृतिक आहार के ही कारण उत्पन्न हुए हैं। प्राकृतिक और सात्विक आहार से किसी प्रकार का रोग नहीं होता है। अगर होता भी है तो उसी को जो अपने पाचन शक्ति से अधिक खाते हैं या जिन्हें बार-बार खाने की आदत होती है।

आहार मात्रा—आहार कितनी मात्रा में खाया जाय, यह प्रत्येक व्यक्ति के पाचन शक्ति पर निर्भर है। फिर भी स्वास्थ्य इच्छुक व्यक्तियों को अपने आहार में ¼ हिस्सा कम रखना चाहिये। इससे पाचन शक्ति हमेशा मजबूत रहती है और भोजन का सात्मिकरण ठीक से होता है। ज्यादा खा लेने से सात्विक और प्राकृतिक आहार भी विषमय हो जाता है और पाचन शक्ति को बिगाड़ देता है। मनुस्मृति में यही बात इस प्रकार लिखी है—

अनारोग्यमनायुष्यम स्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत ॥

(मनु० अ० २)

अर्थात्—ज्यादा आहार ग्रहण करने से रोग की वृद्धि आयुबल, और शान्ति विनिष्ट होती है। इससे पुण्य भी नहीं होता है और लोकनिन्दा होती है। इसलिये इसे त्याग देना चाहिये।

हरएक मनुष्य को अपने पाचन शक्ति से कम खाने की प्रवृत्ति डालनी चाहिये। जब तक पहला खाया हुआ आहार पचकर उसका सात्मिकरण न हो जाय, तब तक दूसरा आहार नहीं करना चाहिये।

रोगियों का आहार—रोग के अवस्था में भोजन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। सभी तरह के बुखार में पहले तीन चार दिन का उपवास किया जाय। फिर जब तक बुखार दूर न हो जाय, तब तक संतरा, बेदाना, सेब, नसपाती आदि फलों का रसाहार करना चाहिये। बुखार छुट जाने पर दो-तीन दिनों तक फलाहार पर रहना चाहिये। इसके बाद ऊपर बनाये हुए मिश्र आहार करना चाहिये।

जिन्हें दस्त या पेचिश की बीमारी हो, वे शुरु में कुछ दिनों तक केवल ताज़ा दही का बना हुआ मठा लें अथवा मौसमी फल—केला, अमरूद, पपीता, सेव, नासपाती आदि और मठा खाँय। जब तन्दुरुस्ती सुधर जाय तब थोड़ी मात्रा मे भात या गेहूँ की दलिया, उबाली हुई सब्जी भी साथ में लिया जा सकता है।

पुराना रोगी, जैसे—दम्मा, गठिया, पक्षाघात आदि रोग से पीड़ित व्यक्ति को—जो थोड़ा बहुत अन्नादि खाकर पचा ले सकते हैं, उन्हें भी शुरू में कुछ दिनों तक केवल फलाहार पर रहना चाहिये। जब पाचन शक्ति बिल्कुल सुधर जाय तब एक शाम रोटी, उबाली हुई सब्जी और दूसरे शाम में केवल फलाहार पर रहना चाहिये।

जो रोगी कमजोर हैं अथवा जिनकी पाचन शक्ति बिल्कुल खराब हो गया है। उन्हें पहले संतरा, बेदाना आदि फलों का रसाहार करना चाहिये। कभी-कभी शाकों का यूष भी लिया जा सकता है। जब हाजमा शक्ति सुधर जाय, तब धीरे-धीरे अन्न भी खाया जा सकता है।

इस प्रकार भोजन करने से निश्चय स्वास्थ्य में सुधार होगा। साथ ही अन्य प्राकृतिक साधनों पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

[१४—कसरत]

जिस प्रकार शरीर धारण के लिये आहार की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शारीरिक अवयवों की स्वाभाविक शक्ति को कार्य क्षम बनाये रखने के लिये कसरत करने की आवश्यकता होती है। इसके द्वारा शारीरिक व मानसिक अवयवों, इन्द्रियों, स्नायु संस्थानों तन्तुओं को स्थायी रूप से स्फूर्ति और पुष्टि प्राप्त होती है, वे अधिक सक्रिय एवं सुदृढ़ हो जाते हैं।

कसरत की आवश्यकता

कसरत करते समय श्वास-प्रश्वास की गति तेज हो जाती है। शुद्ध वायु बड़ी शीघ्रता से और काफी परिमाण में हमारे फेफड़ों में पहुँचती है। जिससे हृदय, फेफड़े और पाचन प्रणाली विशेष सक्रिय हो जाते हैं। खाया हुआ पदार्थ का सात्मिकरण ठीक से होने लगता है। रस-रक्तादि की वृद्धि होने लगती है और उससे शरीर के प्रत्येक अंग

सुगठित होता रहता है। दूषित द्रव्य निःश्वास, स्वेद, मल, मुत्रादि के रुप में बाहर निकल जाता है और शरीर के प्रत्येक अवयव विकार रहित तथा स्वस्थ हो जाते हैं। यही बात महर्षि वाग्भट जी इस प्रकार लिखे हैं—

लाघवं कर्म सामर्थ्यं दीप्तोग्निर्मेदसः क्षयः ।
विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुप जायते ॥

(अष्टांग हृदय)

कसरत करने से शरीर में कार्य करने की शक्ति व स्फुर्ति की वृद्धि होती है। जठराग्नि उदीप्त होती है एवं शारीरिक विकार नाश हो जाता है तथा शरीर के प्रत्येक अवयव समान दृढ़ और मजबूत हो जाते है।

थोड़े में यही सब कसरत से लाभ होता है और इसी लाभ के लिये हर एक व्यक्ति को कसरत करना भी चाहिये। कसरत बहुत तरह से किया जाता है, जैसे—दंड-बैठक, कुस्ती लड़ना, मुग्दर घुमाना, फुटबाल, हाकी आदि खेलना, घोड़े की सवारी करना, तैरना, दौड़ लगाना, योगासन आदि करना। इन सबों के करने की विधि और लाभादि से सभी परिचित हैं। अतः इनका विशेष विवेचन यहां करने की आवश्यकता नहीं है। कोई भी कसरत किया जाय, उसका एक नियमित समय होना चाहिये। उस समय अपने शारीरिक संबल के अनुकूल जिन कसरतों के करने से शरीर में शक्ति स्फुर्ति और चैतन्यता प्राप्त हो उसी को प्रति-दिन पूर्ण मनोयोग के साथ करना चाहिये।

मेरे विचार में "योगासन" सर्वोत्तम कसरत है। जो बाल, वृद्ध, रोगी, निरोगी सभी के लिये सबसे सरल, उपयोगी तथा शरीर के प्रत्येक अवयवों के लिये अधिक उपयुक्त और लाभदायक है। इससे शारीरिक स्नायु संस्थानों पर तनाव पड़ता है जिससे नाड़ियां खिंच कर रबर की नली के समान सिकुड़ जाती है, फिर ढीला छोड़ने से उनमें रक्त का प्रवाह तेजी से होने लगता है। जिससे रक्त शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म तन्तुओं (Cells) तक पहुँचती है और उन्हें पोषण प्रदान करती है। साथ ही उनके विकारों को धो बहाकर बाहर निकाल देती है। इससे शारीरिक अवयवों की कार्य क्षमता बढ़ जाती है और शरीर रोग मुक्त होकर सदा स्वस्थ बना रहता है।

योगासन

शरीर के अन्दर स्नायु संस्थान एक मुख्य अंग है जो शारीरिक क्रियाओं को परिचालित करता रहता है। मस्तिष्क, हृदय, फेफड़े, पाचन प्रणाली आदि शरीर के अन्दर जितने भी अङ्ग है—इन सबों का काम क्रमशः एक विशिष्ट स्थान रखता है। स्नायू संस्थान इन सबों को क्रिया शील बनाये रखता है। अगर स्नायु संस्थान स्वस्थ रहा तो जीवनी शक्ति अधिक समय तक कायम रहती है। और आरोग्य तथा आयुर्बल का विकाश होता है। अतः शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिये "योगासन" सर्वोपयोगी है। विस्तार भय से इसकी विवेचना मैं यहीं छोड़ता हूँ। विशेष जानकारी के लिये हमारी लिखी हुई "सचित्र योगसाधन" मंगाकर देखें।

रोगियों का कसरत—जो रोगी है, खाट पर से उठ बैठ नहीं

सकते हैं वे लेटे ही लेटे अपने हाथ-पैर आदि को हिला डुला कर, लम्बी गहरी सांसें लेकर शारीरिक कार्य क्षमता को बढ़ा सकते हैं। जो थोड़ा चल-फिर सकते हैं, उनके लिये सबसे सरल कसरत टहलना है। वे घर के बरामदे, आंगन या बाड़ी में टहल कर अपनी जीवनीय शक्ति को जगा सकते हैं। जैसे-जैसे शक्ति बढ़ती जाय, वैसे-वैसे टहलने का क्रम भी बढ़ाते जाना चाहिये। जब शरीर में कुछ शक्ति आ जाय, तब सुबह में टहलना और शाम में योगासन करना सर्वोत्तम होगा। सम्भव है, कसरत का यह क्रम प्रारम्भ में थका देने वाला हो। लेकिन याद रखिये, जीवन क्षेत्र के किसी भी दिशा में बिना अथक परिश्रम के कभी भी सफलता नहीं मिल सकती है।

कसरत का अभ्यास एक नियमित समय पर कीजिये और इसकी मात्रा बहुत धीरे-धीरे बढ़ाइये। अनियमित या शक्ति से अधिक कसरत करने से जीवन शक्ति को बढ़ाने के बजाय यम सदन का ही रास्ता देखना पड़ेगा। किसी कवि का यह वचन सर्वथा सत्य है कि-"अंतरे खोतरे कसरत करे, दैव न मारे अपुने मरे।" इसलिये कसरत प्रतिदिन नियत समय पर करना चाहिये और शरीर में हल्की थकान आ जाने पर छोड़ देना चाहिये।

(१५—विश्राम और निद्रा)

विश्राम और नींद की आवश्यकता—जिस प्रकार हमारे स्वास्थ्य के लिये प्रकाश, वायु, आहार तथा परिश्रम की आवश्यकता है, उसी प्रकार हमें विश्राम तथा नींद के द्वारा

स्नायु मंडल तथा पेशियों को नरम व ढीला कर शान्ति देना भी आवश्यक है। क्योंकि इसी समय स्नायु तन्तुओं की क्षति पूर्ति होती है तथा सारे शरीर में नव जीवन का संचार होता है। जिससे शरीर और मन दोनों स्वस्थ होकर फिर परिश्रम करने के योग्य हो जाता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि उठने-बैठने, चलने-फिरने, चिन्तन-मनन करने तथा ऐसे ही अन्य कार्य करने से जो शारीरिक व मानसिक कोषों की क्षति होती है एवं शरीर व मन में जो थकान आती है उसकी आवश्यक पूर्ति भोजन, विश्राम तथा निद्रा द्वारा हो जाती है।

यहां प्रश्न हो सकता है कि जब भोजन विश्राम तथा निद्रा से ही शरीर की आवश्यक पूर्ति हो जाती है तब फिर परिश्रम या कसरत करने की क्या आवश्यकता है? ऐसे लोगों को यह समझना चाहिये कि प्रकृति का यह स्वाभाविक नियम है कि कोई भी शरीर धारी जीव निठल्ला (बेकार) बैठा न रह कर वह कुछ न कुछ अंग-प्रत्यंगों को हिलाने-डुलाने वाली कार्य-सम्पादन करता रहे, जिससे खाया हुआ पदार्थ पच जाय और वह शारीरिक पोषण तथा संवर्द्धन में सहायक हो। प्रकृति का यह भी नियम है कि परिश्रम से जो शारीरिक कोषों की क्षति होती है तथा शरीर व मन में जो थकान आती है उसकी पूर्ति विश्राम तथा निद्रा द्वारा हो जाय। इसके बिना विश्राम व नींद का कोई महत्व नहीं है। महर्षि चरक का यह वचन सर्वथा सत्य है कि—

यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः॥

अर्थात—काम (परिश्रम) करते-करते शरीर व मन के निष्क्रिय हो जाने पर जब इन्द्रिय अपने कार्यों से निवृत्त हो जाती हैं तभी निद्रा आकर उसे नव जीवन देती है।

स्वस्थ अवस्था में स्वाभाविक विश्राम का मुख्य साधन निद्रा ही है और अच्छी नींद भी उसी को आती है जो नियमित आहार विहार तथा शारीरिक परिश्रम या कसरत करता रहे।

विश्राम और नींद का समय—अगर हम पशु-पक्षियों की दैनिक-चर्या पर विचार करें तो ज्ञात होता है कि वह लगभग सब के सब सूर्योदय के समय अपने काय क्षेत्र में बाहर निकल पड़ता है और जब सूर्य ढलाव पर होता है अर्थात दोपहर के पश्चात शनैः-शनैः अपने शरीर को विश्रान्ति देने लगता है, फिर सूर्यास्त होते ही अपने घोंसलों में लौट आता है तथा निद्रा देवी के गोद में लेट जाता है।

मनुष्य भी इस नियम का अपवाद नहीं हो सकता है। जो प्राकृतिक नियमों का पालन करता है और उषा काल होते ही पशु-पक्षियों की तरह शिघ्र उठकर अपने कार्य क्षेत्र में बाहर निकल पड़ता है। वह तत्काल मिलने वाली सूर्य की जीवन दायनीय रश्मियों का अनुभव करेगा।

रात्रि में पूरा नींद सोने के पश्चात प्रातः काल शरीर में नवीन शक्ति, स्फूर्ति और विशेष चेतन्यता का प्रादुर्भाव हुआ होता है। उस समय हममें काम करने की शक्ति को गति होती है तथा शरीर में दृढ़ता और नवीनत्व प्रतीत होता है। फिर दोपहर के पश्चात हम में शनैः-शनैः चेतनता और स्फूर्ति

कम होने लगती है, क्योंकि शरीर में थकावट हो जाती है, तथा सूर्यास्त के बाद शरीर में पूर्ण आलस्य की दशा उत्पन्न हो जाती है और विश्राम करने या सोने की इच्छा होती है ।

इससे परिणाम यह निकलता है कि प्रातःकाल और दिन के तीसरे पहर तक काम करना चाहिये, इसके पश्चात क्रमशः परिश्रम को हल्का कर देना चाहिये या विश्राम करना चाहिये । अन्त में सूर्यास्त के पश्चात पशु-पक्षियों की भांति आठ या नौ बजे रात्रि में सो जाना चाहिये और रात्रि के तीसरे पहर (३-४ बजे ब्रह्म मुहूर्त वेला) में उठ जाना चाहिये ।

क्योंकि:— सेव युक्ता पुनर्युङ्क्ते निद्रा देहं सुखायुषा ।
पुरुषं योगिनं सिद्धया सत्या बुद्धिरिवागता ।

जिस प्रकार योगी को सिद्धियों से तत्वज्ञान की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार नियमित रूप में सेवन की गई नींद सुख और जीवन देती है ।

[१६—ब्रह्मचर्य]

"मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्"

ब्रह्मचर्य (वीर्यधारण) ही जीवन है और वीर्यनाश ही मृत्यु है ।" शुद्ध और प्रकाश युक्त वायु, उत्तम आहार तथा विश्राम, व्यायाम आदि द्वारा हम स्वस्थ तथा तन्दुरुस्त रह सकते हैं । पर, जैसे—"जितना कमाएं उतना खर्च कर डालें" के अनुसार हम जितना स्वास्थ्य और तन्दुरुस्ती को

बनाये, उतना ही विषयान्ध हो उसे नष्ट कर दें, तो बचा क्या ? मानव शरीर में रक्त और वीर्य–ये दो प्रधान तत्व हैं। शरीर के समस्त जीवन शक्ति(Vitality)का धारक और पोषक यही तत्व होता है। इसी से जीवन की उत्पत्ति होती है, तथा आयुष्य और आयुर्बल का विकाश होता है। मनुष्य जितना ही इसे धारण करता है उतना ही वह अमरत्व की ओर बढ़ता है। उसमें तेज, सामर्थ्य, पुरूषार्थ और ईश्वरत्व प्रकट होने लगता है। हम प्रत्यक्ष देखते भी हैं कि जो लोग संयमी जीवन व्यतीत करते हैं, वे व्यभिचारियों की अपेक्षा स्वभावतः अधिक सामर्थ्यशाली, तेजस्वी, पुरूपार्थी और धैर्यवान होते हैं। अतः उत्तम स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवन के लिये ब्रह्मचर्य का पालन करना [illegible] ।

वीर्य की उत्पत्ति—मनुष्य जो कुछ खाकर पचा लेता है उसी का सार तत्व वीर्य है। महर्षि चरक का भी कथन है कि—

रसाद्रक्तं ततोमांसं मांसान्मेदः प्रजायते ।
मेदस्यास्थितो मज्जा मज्जायाः शुक्र सम्भवः ॥

अर्थात—भोजन के पचने पर रस बनता है, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा, मज्जा से वीर्य बनता है।

जब शरीर में वीर्य धारण किया जाता है तब उसका भी पाचन क्रिया होती है और उससे "ओज" बन जाता है, इसी का दूसरा नाम जीवन-शक्ति (Vitality) भी है। शरीर

में जितना ही इसका विकाश होता है उतना ही शरीर व मन में शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह, साहस, धैर्य, लावण्य, तेज, सौन्दर्यता, प्रसन्ता, एवं बुद्धि बल आदि का विकाश होता है। और मनुष्य दीर्घायु हो सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करता है। वेद में भी लिखा है कि—

नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घ मायुः॥
(अथर्व वेद)

अर्थात—(एनं) वीर्य की रक्षा करने वाले ब्रह्मचारी को (रक्षांसि) विघ्नकारी दुष्टभाव और ज्वरादि पीड़ाएं और (पिशाचाः) मांस भोजी जीव और दुर्बल करने वाले रोग कभी (न) नहीं (सहन्ते) दबाते, क्योंकि (एतत) यह वीर्य रूप सुवर्ण, कान्ति कारी मूल पदार्थ (देवानां) समस्त इन्द्रियों में और विद्वानों में (प्रथमज) सबसे पूर्व और श्रेष्ठ (ओजः) ओज, तेज रूप है। (यः) जो ऊर्ध्वरेता पुरुष (दाक्षायणं) मुख्य प्राण में आश्रित इस (हिरण्य) हितकारी, रमणीय, पदार्थ शुक्र को (बिभर्त्ति) यत्नपूर्वक धारण, रक्षा करता है (सः) वह (जीवेषु) जीवों में (आयुः) अपने आयु, जीवन काल को (दीर्घ) बहुत लम्बा, अधिक (कृणुते) कर लेता है।

"ओजो हि शरीरधारकों बलहेतुरष्टमो धातुविशेषः।"

ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य का इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि बिना इसके पूर्ण स्वास्थ्य का मिलना कठिन है। वीर्यक्षय से भूख की कमी, बद्धकोष्टता, शक्ति हीनता, कृशता आदि रोग ही नहीं, बल्कि राजरोग (यक्ष्मा) तक हो जाता है। अतएव

सारी शक्ति लगाकर वीर्य नाश के कारणों से बचना चाहिये और सन्तानोत्पति के इच्छाओं को छोड़ इसका कभी मन से भी चिन्तन नहीं करना चाहिये। आयुर्वेद में वीर्य नाश के आठ कारण वतलाये हैं—(१) विषय-वासनाओं की बातों को याद करना, (२) गन्दे और अश्लील पुस्तकों को पढ़ना (३) स्त्रियों के साथ हंसी-मजाक करना (४) अपनी या पराये स्त्री को विषय की इच्छा से देखना, (५) विषय सुख की पूर्ति के लिये मन में संकल्प करना (६) विषय वासनाओं की पूर्त्ति के लिये प्रयत्न करना (७) स्त्री-पुरूष का एकान्त वास (८) स्त्री-पुरूष का संयोग।

इन आठ प्रकार के विषयों से बचकर जीवन विताने का नाम ब्रह्मचर्य है जो ऐसा कर सकता है, वही सच्चे अर्थों में ब्रह्मचारी है और उससे मिलने वाला आनन्द व सुखों का उपभोग कर सकता है। अतएव "जब जागे तभी सवेरा" को मान कर जो जिस अवस्था में है, वही से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना शुरू कर दीजिये। यह तभी सम्भव हो सकेगा, जब कि खान-पान तथा रहन-सहन में हमेशा सावधान रहेंगे।



चौथा अध्याय

स्वास्थ्यप्रद-जीवन-यापन

—:o:—

गठीला-छनहना बदन, कर्त्तव्य-कर्म में अदम्य उत्साह, नयी उमंग, नया चाह, मन में प्रसन्नता, शरीर में अद्भुत ओज और सामर्थ्य, कान्तिमान मुख मंडल, तेजोपूर्ण नेत्र—यही तो स्वास्थ्य का प्रधान लक्षण है। इसके बिना शरीर में शक्ति, स्फूर्ति और सौन्दर्यता कहां से आवेगा ? भड़कीली पोशाक, बनावटी शृङ्गार, स्नो-पाउडर से शरीर में ओज और लावण्यता नहीं ला सकते ! स्वास्थ्य के प्रति लापरवाह तथा इन्द्रिय लोलुपता से रोग ही नहीं, भयङ्कर यातनाओं का सामना करना पड़ता है। उनमें न तो शक्ति-सामर्थ्य ही रह जाता है और न बुद्धि विलक्षणता ही।

अतः जीवन को सफल बनाने के लिये प्रथम अपने स्वास्थ्य पर ध्यान दीजिये। यदि आप कमजोर या रुग्न हैं तो घबराइये नहीं। उपरोक्त लक्षणों से युक्त स्वास्थ्य—सौन्दर्य का पाना असम्भव नहीं है। आवश्यकता है—अपने रहन-सहन को प्रकृतिनुकूल बनाने की। अगर आप भोजन, विश्राम, संयम, परिश्रमादि सभी आवश्यक कार्य नियमित रूप से करेंगे, तो शरीर के प्रत्येक अवयव (स्नायु-मंडल, मस्तिष्क, फेफड़े, हृदय, अंतड़ियां आदि) ठीक रहेगा, रस-रक्तादि अच्छा बनेगा और इससे उत्तरोत्तर स्वास्थ्य में वृद्धि होती रहेगी। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिये—

(१)—जिस प्रकार संसार में आकर अन्य सुख साधनों का संग्रह करना होता है, उसी प्रकार शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य-सुख को बनाये रखने के लिये नियमित तथा संयमित जीवन-यापन की आवश्यकता होती है और इसका आरम्भ सवेरे शय्या त्यागने से होता है। सूर्योदय से पूर्व ब्रह्म मुहूर्त के समय (३॥-४ बजे) शय्या से उठकर ईश्वरोपासना करते हुए नित्य कर्मों में प्रथम शारीरिक शुद्धि पर ध्यान दीजिये। इसके अन्तर्गत—शौच जाना दातून-कुल्ले करना, तैल मालिश, स्नान करना आदि कर सकते हैं। तदन्तर कसरत तथा वायु सेवन के लिये बाहर निकलिये। इन सभों से शरीर में तेज और बल की वृद्धि होगी, हृदय में अदम्य उत्साह और उमग की उत्पति होगी तथा रक्त परिक्रमण में अद्भुत शक्ति का संचार होगा, स्मरण शक्ति तीक्ष्ण होगी।

कसरत के बाद विश्राम करना भी आवश्यक है। कसरत करने से शरीर में जो थकान आती है—थोड़ी देर विश्राम लेने से शरीर को अपने टूटे हुए तन्तुओं की मरम्मत करने का मौका मिलता है। यों तो शरीर की पूरी मरम्मत निद्रा के समय ही होता है। फिर भी कार्य के समय बीच-बीच में थोड़ी देर विश्राम लेने से शरीर में हमेशा ताजगो व स्फूर्ति बनी रहती है।

नियमित कसरत के अलावे भी अपने घर का सारा काम स्वयं प्रसन्नता और उत्साह के साथ कीजिये। काम करते समय सोचिये—हमारे शरीर में शक्ति और स्वास्थ्य का विकाश हो रहा है। शरीर का प्रत्येक अवयव पुष्ट हो रहा है। इस प्रकार काम करते हुए समय पर सोने से हमारा

स्वास्थ्य उत्तम रहेगा। हम रोगों के आक्रमण से बचे रहेंगे।

स्वास्थ्य को स्थायी बनाये रखने के लिये उपरोक्त साधनों के साथ आहार का नियम भी नियमित होना चाहिये।

अनियमित आहार से पाचन प्रणाली खराब हो जाती है और अनेक तरह के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अतः कसरत विश्रामादि के बाद "आहार" प्रकरणों में बताये अनुसार दिन-रात में केवल दो बार सात्विक और हल्का भोजन कीजिये। अगर सुबह में नाश्ता करने की आदत हो तो, कोई भी मौसमी फल और दूध ले सकते हैं अथवा दो में से कोई एक लिया जा सकता है। इस प्रकार भोजन करने से आंतों पर अधिक दबाव नहीं पड़ेगा। पाचन प्रणाली हमेशा मजबूत रहेगी, रस-रक्तादि अच्छा बनेगा, जिससे शरीर के प्रत्येक अवयवों और तन्तुओं का पोषण तथा नवनिर्माण होता रहेगा।

उपरोक्त सभी उपायों को करते हुए आचरण और विचारों को भी शुद्ध रखना चाहिये। बुरी संगति और दूषित विचारों से स्वास्थ्य तथा शरीर दोनों का नाश हो जाता है। क्योंकि शरीर का विचारों के साथ गहरा सम्बन्ध है। विचारों का प्रभाव शरीर पर तत्क्षण पड़ता है। जैसा आप सोचेंगे या मनन करेंगे, उसका असर शरीर पर वैसा ही पड़ेगा। विशेषज्ञों का कहना है कि चिन्तित व्यक्तियों का पाचन क्रिया खराब हो जाती है। भोजन का ठीक से परिपाक नहीं होता है; मन्दाग्नि हो जाती है। उसी तरह क्रोध व्यक्तियों के

आंतों में भी कृपणता बनी रहती है, कब्ज की शिकायतें बना रहता है। भय से हृदय की गति बढ़ जाती है, उसका असर रक्त पर ऐसा पड़ता है—मानो अभी हृदय की धड़कन बन्द हो जायगी। इसी प्रकार क्रोध से, काम से, प्रियजनों के वियोग से खाना-पीना, सोना सब हराम हो जाता है। शरीर में एक अजीब उथल पुथल होने लगती है। हृदय की क्रिया मन्द पड़ जाती है। चेहरा विकृत हो जाता है। मन के सभी विकार—काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, चिन्ता आदि से शरीर रोग ग्रसित हुए बिना नहीं रहता। अतएव मन के विकारों (दूषित विचारों) से बचिये। अच्छी संगति तथा अच्छे विचारों से मन स्वस्थ रहेगा। मन के स्वस्थ रहने से शारीरिक व मानसिक अवयवों की क्रिया ठीक रहेगी और तभी उतम स्वास्थ्य-सुख का आनन्द ले सकेंगे।

(चिकित्सा-विधि)

जो सज्जन प्राकृतिक चिकित्सा के विधियों को जानकर किसी खास रोग का चिकित्सा करना चाहते हैं। उन्हें पहले इस पुस्तक को शुरू से अन्त तक कई बार समझदारी के साथ पढ़ जाना चाहिये, तभी उससे उचित लाभ उठा सकेंगे।

इस पुस्तक में यह बताया गया है कि रोग हमारी बदपरहेजी के कारण उपजा हुआ—विकार (दूषित द्रव्य) है। और चिकित्सा का मतलब—उन विकारों को निकालना और
[redacted]नाना है। इसलिये अगर कोई अपने रोग
[redacted]ना चाहते हैं तो उसे इस पुस्तक में सभी

नियमों का पालन करना चाहिये। अर्थात—उपवास, भोजन सुधार, विभिन्न स्नान और पट्टियां, श्वास-प्रश्वास की क्रिया कसरत आदि का प्रयोग करना चाहिये।

अतः रोगी का चिकित्सा करते समय निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये—

(१) पहला—रोगी के पाचन-प्रणाली और स्नायु-संस्थानों को ठीक करना।

(२) दूसरा—जीवनीय-शक्ति को जगाना।

(३) तीसरा—रोग के विष को निकालना।

यह तीनों काम भोजन-सुधार, फलाहार, उपवास, एनिमा के प्रयोग, विभिन्न स्नान और पट्टियां, कसरत, श्वास प्रश्वास की क्रिया करने से हो जाता है।

पाचन-अवयवों के ठीक हो जाने से खाये हुए पदार्थों का रस-रक्तादि अच्छा बनेगा, उससे शरीर के प्रत्येक अवयव और स्नायु-संस्थान पुष्ट होगा, जीवनीय शक्ति की वृद्धि होगी और रोग के विष दूर हो जायंगे।

चिकित्सा करते समय एक कार्य-क्रम बना लेना चाहिये, जैसे

४ बजे सुबह—शय्या पर उठ जाना और थोड़ी देर ईश्वरोपासना करना।

४॥ से ५॥ बजे सुबह—पाखाना जाना, मुँह हाथ धोना आदि।

६ से ७ बजे सुबह—कटि स्नान और टहलना अथवा कसरत करना।

८ बजे दिन —नास्ता करना।

११ बजे दिन —साधारण स्नान और बदन में गर्मी लाना।

१२ बजे दिन —भोजन और विश्राम।

४ बजे दिन —नित्य क्रिया क्रम से निपटना।

५ बजे शाम—पेट के उपर भिगी पोल्टिश बांधना अथवा मेहन स्नान लेना। फिर बदन में गर्मी लाने के लिये कसरत करना या टहलना।

७ बजे संध्या —भोजन।

६ बजे रात्रि – सो जाना।

अथवा

सुबह ५ बजे—नित्य क्रिया क्रम से निपटने के बाद—एनिमा यन्त्र द्वारा पेट की सफाई करना बाद खुली मैदान में टहलना या कसरत करना।

सुबह ७ बजे—पेट के चौतरफ मिट्टी की पोल्टिश बांधने के बाद स्नान करना।

१० बजे दिन—भोजन करने के बाद थोड़ी देर विश्राम करना फिर अपना दैनिक कार्य करना।

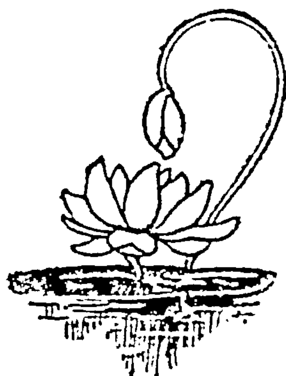
६ बजे संध्या—शौचादि से निवृत होकर कटि या मेहन स्नान लेना।

८ बजे सन्ध्या—भोजन कर लेना।

१० बजे रात्रि—सो जाना।

उपरोक्त कार्य क्रम के अनुसार रोगी की आवश्यकता,

उसकी शक्ति और सहूलियत को देखते हुए इस किताब में दिये हुए नियमों के मुताबिक चिकित्सा क्रम चलाने से निश्चय लाभ होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।



इति

चयनिका

—:❀:❀:—

मंगल-सूत्र

[१]

असतो मां सद्गमय ।

असत्य से पृथक कर हमें सत्य की ओर ले चलो ।

तमसो मा ज्योतिर्गमय ।

अविद्यान्धकार से हमें विद्यारुप प्रकाश में ले चलो ।

मृत्योर्माऽमृतं गमयेति ।

—मृत्यु मार्ग से हमें पृथक कर मोक्ष की ओर ले चलो ॥

"बृहदारण्यक उपनिषद"

(२)

तनूपा अग्नेऽसि तन्वंमे पाहि ॥
आयुर्दा अग्नेऽस्या युर्मे देहि ॥
अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आ पृण ॥

(यजु० ३/१७)

अर्थात—हे अग्ने ? तुम शरीर की रक्षा करने वाले हो, मेरे शरीर को पुष्ट कीजिये । तुम आयु को देने वाले हो, मुझे पूर्ण आयु दीजिये । मेरे शारीरिक स्वास्थ्य में जो भी न्यूनता हो उसे पूरा कर दीजिये ।

(३)

वाङ्‌ म आसन्नोसोः प्राणश्चक्षु रक्ष्णो श्रोत्रं कर्णयो ॥

अपलिताः केशाय अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥
ऊर्वो रोजो जङ्घयोर्जवः दयोः प्रतिष्ठा ॥
(अथर्व० १९।६०।१-२)

अर्थात्—मेरी वाणी, प्राण, आँख और कान सभी अपना-अपना काम कर सकें। बाल काले रहें, दांतों में कोई रोग न हो, भुजाओं में अधिक बल हो, मेरी ऊरुओं में ओज जांघों में वेग और पैरों में दृढ़ता हो। मेरी समस्त इन्द्रियां पूर्ण स्वस्थता से अपना-अपना कार्य करें, यही मैं चाहता हूँ।

(४)

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥
—ऋग्वेद

अर्थात्—हे देवेश्वर ? देव विद्वानों ? हमलोग सदैव कल्याण मय वचन को ही सुने। हम नेत्रों से सदा मंगलमय वस्तुओं को ही देखें। हे जगदीश्वर ? हे ज्ञानी ? हमारे सब अङ्ग सदा दृढ़ रहें, जिससे हमलोग सदा आपकी स्तुति और आज्ञा का अनुष्ठान करते हुए आप द्वारा निर्धारित आयु को सुख पूर्वक प्राप्त हों अर्थात सदा सुख से ही रहें।

(५)

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

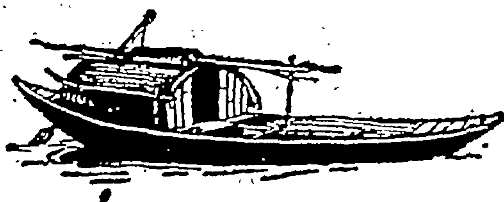
हे ईश्वर ? सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, वृक्षादि सभी पदार्थ आपकी कृपा से हमें सुख रूप में प्राप्त हों। हे

जगत पालक ! प्राणादि के सुसमीप बैठे हुए हम आपकी कृपा से सदा सुखी रहें, किसी प्रकार से हमारी हानि न हो, आप हमारी रक्षा करें ।

ओ३म ! द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः
पृथ्वी शान्तिरापः शान्ति रोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्ति ब्रह्म शान्तिः
सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

—यजु० ३६।१७

हे ईश्वर ! प्रकाशयुक्त सूर्यादि, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, जल, औषधियां, वृक्षादि वनस्पति, सब विद्वान पुरुष, वेद एवं सब वस्तुएं शान्ति, सुखकारी निरूपद्रव हों । स्वयं शान्ति भी सुखदायनी हो और वही शान्ति मुझे प्राप्त हो ।



समाप्त

श्री चन्द्रशेखर योगी द्वारा लिखित अन्य चार पुस्तकें—

१— तपेदिक ।

तपेदिक किन-किन कारणों से होती है, उससे बचने के उपाय और चिकित्सा ।

२— सचित्र योगसाधन ।

जिसके साधन से मनुष्य सदा निरोग, सुन्दर एवं दीर्घजीवी रहकर सुखपूर्वक जिन्दगी व्यतीत कर सकता है ।

३— स्वावलंबी जीवन ।

इस पुस्तक में ऐसे-ऐसे घरेलू उद्योगों को बताया गया है जिसके द्वारा कम पढ़ा लिखा व्यक्ति भी आसानी से जीविकोपार्जन कर सकते हैं ।

४— स्वस्थ्य बालक ।

जन्म से लेकर बड़े होने तक के बालकों को स्वस्थ रहने की स्वाभाविक रीति और पालन-पोषण का सही तरीका बताने वाली पुस्तक ।